प्रकाशक—गांधी मगनलाल जी शंकरलाल जी
की तरफ से भेट।

॥ श्रीशांतिसागर सूरये नमः ॥

यज्ञोपवीत संस्कार।

—:o:—

संस्कृतिः सर्वभूतानां प्रधानं शुद्धि साधनम्।
शास्त्रोक्त विधि संस्कारा स्त्रिवर्गानां तथा मताः ॥ १ ॥
भाषासु संस्कृता भाषा प्रिया देव द्विजन्मिनाम्।
तथोपनीति संस्कारः प्रियो देव द्विजन्मिनाम् ॥ २ ॥

सम्पादक—
श्री १०५ क्षुल्लक ज्ञानसागर जी महाराज।

सन्देश प्रेस चूड़ीवालान देहली

प्रस्तावना ।

——:०:——

अर्हच्चरणयोर्नित्यं सपर्यायां तथात्मनः ।
शुद्धौ दाने नमोभक्त्या चिन्हौपासिकतन्तवे ॥१॥

अनादि अनिधन शुद्ध समृद्ध और शुद्धि समृद्धि के कारण परम पुनीत श्रीजिनधर्म में अन्यतत्वों के समान एक यह संस्कार तत्व भी उस अप्रतिहत अबाध रीति नीतिसे प्रतिपादित है कि–जिसको समानता– **यन्नेहास्ति न कुत्रचित्** , इस वाक्य के अनुसार अन्यत्र कहीं भी नहीं है ।

कारण कि यहां की तत्व शैली जिस नीति और उपनीति से प्रतिपादित है उसकी मूल भित्ति (नीव) अविरुद्ध अनेक धर्म प्रतिपादिका स्याद्वादप्रवचनमुद्रा सप्तभंगी है । इस जैनी (जिनोक्त वा विजेता) नीति के विना जहां कहीं भी तत्व प्रतिपादन है वह खपुष्पके समान मिथ्या तथा अभावरूप ही है ।

जो लोग जैन कुल में उत्पन्न होने मात्रसे अपने को जैनी समझ कर जैनधर्म तथा उसके तत्वों में से किसी भी तत्व का स्याद्वाद नीति के विना प्रतिपादन करने की शैली का अवलम्बन करते हैं वे भी उसी कोटि में परिगणित हैं जैसे कि अन्य धर्मी ।

मैं इस छोटी सी भूमिका में उन सर्व धर्मियों की समालोचना करने के लिये उद्युक्त नहीं हुआ हूं किन्तु इस विषय के ... कि ...षय में

उद्युक्त हुआ हूं कि जिन तत्वोंके विषय में कुछ हमारे साधर्मी भाई भ्रान्त हो रहे हैं उन तत्वों में से किसी एका तत्वका शास्त्रप्रमाण व युक्तिप्रमाण से कुछ एक दिग्दर्शन करूं।

यहां प्रकरण संस्कारविधि का है इसलिये इसके विषय में एक दो शब्द लिखना अति आवश्यक है

संस्कार शब्दका निरुक्ति द्वारा एक अर्थ तो यह है कि जो आत्मा अनादिकालीन कर्ममलजनित राग द्वेषादि विधर्मों से मलिन था उसको शुद्ध बनाना। संसारकी चारों अवस्थाओं में से मनुष्य अवस्थाही एक ऐसी है कि जिस के बिना यह जीव कभी भी उस विशुद्ध सिद्धावस्था का लाभ नहीं कर सकता। जब यह (विषय) निर्विवाद सिद्ध है तो फिर यह भी निर्विवाद सिद्ध है कि जिस अवस्था (मनुष्यदेह) से यह जीव परम शुद्धिका लाभ करता है वह अवस्था भी विशुद्ध होनी चाहिये। और उस विशुद्ध अवस्था में अभ्यन्तर पुण्यकर्मादि साधनों के सिवाय जो खास निमित्त साधन है उसीका नाम संस्कार शब्द का द्वितीय अर्थ है। उसके (संस्कारके) लिये जो विधि की जाती है उसी का नाम संस्कारविधि है। उसका गर्भाधान आदि १६ सोलह प्रकार से सविस्तृत वर्णन जैन ग्रन्थों में पाया जाता है तथा इन्हीं का संक्षिप्त संग्रह पं० लालाराम जी ने अपनी **षोडश संस्कार**—नामक पुस्तक में किया है वहां पर होमविधि के साथ संक्षेप में अन्य सर्व विधि और उसके उपयोगि मंत्र सामिग्री आदि का वर्णन है। **यज्ञोपवीत संस्कार** नामक ग्रन्थ जो श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक-ज्ञानसागर जी महाराज ने संग्रह किया है वह उन क्रियाओं के धारण करने में बड़ा ही उपयोगी है तथा इस ग्रन्थ में संक्षेप से आर्षीय प्रमाणों सहित-सद्धर्म, सन्मार्ग, मनुष्यजन्मप्राप्तिकी दुर्लभता,

तथा उसकी उपयोगिता में साधक श्रावकधर्म, संस्कार धारण आदि का सामान्य वर्णन करते हुए यज्ञोपवीत संस्कारका विशेषता से वर्णन किया है। इस वर्णन में आपने यज्ञोपवीत धारण के अधिकारी, यज्ञोपवीत का स्वरूप और उसके धारण, साधन, प्रमाण, अवस्था आदि का उपयोगी कथन किया है।

यज्ञोपवीत ।

इस ग्रन्थ के पढ़ने से यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि-यज्ञोपवीत (यज्ञसूत्र) जैनागम (शास्त्र) सम्मत है। क्योंकि यहां आदिपुराण, नीतिसार, देवसेनकृत भावसंग्रह, ब्राह्मसूरिसंहिता, जिनसंहिता, अकलंकसंहिता,आशाधरप्रतिष्ठापाठ आदि अनेक ग्रन्थों के प्रमाण है। अतः इसविषय में कोई शास्त्रप्रमाणका दुराग्रह करे तो उसका दुराग्रह निर्मूल होने से केवल दुराग्रह ही है। क्योंकि यहां इतने और इससे भी अधिक जब शास्त्र प्रमाण इस विषय के स्पष्ट द्योतक हैं तो अब शास्त्र प्रमाणता कौनसी बाकी रही। तथा इस विषय के बाधक कोई ऋषिवाक्य भी नहीं हैं।

शायद कोई यह कहे कि हमको अपने मनोनीत ऋषिग्रन्थ ही इस विषय में प्रमाण होने चाहिये अन्य नहीं। तो फिर मेरा इस विषय में कहना इतना ही है कि उनमें (मनोनीत ऋषिग्रन्थों में) कौनसी छाप लगी है कि वे ऋषि प्रणीत हैं और ये नहीं। थोड़ी देर के लिये यही क्यों न मान लिया जाय कि उन ऋषियों के समय में इन यज्ञोपवीत संस्कार आदि विषय की अविरुद्ध धारा प्रवाह रूप से प्रवृत्ति होगी अतः इस विषय के ऊपर प्रकाश डालने की आवश्यकता न समझी हो तथा इन ऋषियों ने अपने समय में समझी हो क्यों कि हितकारियों की प्रवृत्ति विशेष हितकर (अति आवश्यक) विषय में

ही होती है अन्यत्र नहीं। यदि उनकी अन्यत्र (उस समयके लिये अनावश्यक) में भी प्रवृत्ति हो तो फिर उनकी हितकरता ही गण्य तथा मान्य कैसे समझी जाय। जब कि यह नीति है **प्रयोजनमन्तरा मन्दोपि न प्रवर्तते** इत्यादि। तथा यह भी कहां निश्चय है कि उनने इस विषय के ग्रन्थ नहीं लिखे। उनके लिखे हुए ग्रन्थ यदि नष्ट हो गये हों तो उनकी असंभवता भी क्यों और आश्चर्य भी क्या? यदि ऐसा नहीं है तो पुस्तकालयों की सूची में नाम होने पर भी वे अपूर्व ग्रन्थ आज क्यों नहीं मिलते जैसेकि गंधहस्तमहाभाष्य आदि।

शायद कोई अपनी परीक्षा प्रधानता से यह कहे कि यह विषय द, जैनधर्म के विरुद्ध है क्योंकि इसमें विरोधकता के साधक अमुक (आजकल ऐसी प्रथा नहीं देखी जाती तथा ये अन्य ग्रन्थों के उद्धृत वाक्य होने से प्रमाण कोटि में नहीं आसकते इत्यादि) विषय हैं। उनसे मेरा साग्रह निवेदन है कि आपको जो परीक्षा प्रधानता है वह सिर्फ एकान्तवाद की मुख्यता से कलुषित है क्योंकि हमारी जो यह **सर्व एव हि जैनानांप्रमाणं लौकिको विधिःयत्र सम्यक्त्व-हानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्।** जैनी स्याद्वादमय नीति है उसकी आपने चरितार्थता नहीं की। यदि इस नीति का अवलम्बन करते तो वैसी परीक्षा तक आपकी दौड़ न होती। और न सत्य विषय के कुचले जाने की ऐसी नौबत हीआती।

आप यह निश्चयही समझें कि जो जैन गुरु हैं वे निश्चयही स्वार्थत्यागी विवेकी निस्पृही और स्वपरोपकारी हैं उनके द्वारा संसार का अकल्याण होना असंभव ही नहीं किन्तु सर्वथा ही असंभव है। क्योंकि इनगुणों के धारक कभी भी दम्भी ठग नहीं होते। अतः

(उपर्युक्त गुणों के कारण) उनके अक्षरशः वाक्यकी प्रमाणीकता ही प्रेक्षापूर्वकारी विद्वानों के लिए कल्याण प्रद है।

जैनधर्मकी नीति स्पष्ट कहती है कि-समस्त जैनियोंकी जितनी लौकिक क्रिया आचरण व्यवहार आदि विधि हैं वे सर्व ही प्रमाणीक हैं जहां सम्यक्त्वकी हानि न हो तथा जहां व्रतों में किसी प्रकार का दूषण न आवे। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि कोई भी व्यवहार तथा कोई भी वाक्य दूसरी जगह का क्यों न हो परन्तु वह हमारे यहां हमारी नीति से संघटित है तो हमारा ही है। क्योंकि जैसे व्यवहार व उस विषय के वाक्य हमारे सदृश अन्यत्र भी मिलें तो उस में नियामकताका ऐसा कौन हेतु है जो ये उन्हीं के हैं हमारे नहीं हैं। क्या वाक्य रचना शैली सर्वत्र विरुद्धही रहती है एकसी नहीं यदि इस विषय के ठेकेदारी का नियामक कोई कायदा या कानूनविषयक शास्त्र आपके पास हो तो फिर उस वाक्यरचना सादृश्य वैसादृश्य द्वारा प्रमाणाप्रमाणीकताका पचडा भी आपका मान्य समझा जाय नहीं तो फिर वह जो आपका हेतु है वह हेत्वाभास ही क्यों न समझा जाय।

पद और वाक्य की अनुकरणता सिर्फ काव्य शास्त्रों के लिये ही निन्दनीय है धर्मग्रन्थ और कानून ग्रन्थोंके लिये नहीं है क्योंकि काव्यों में ही कवि की बुद्धिविषयक प्रतिभाकी परीक्षा होती है।

यदि कुछ इधर उधर हो कर अथवा वैसेही हमारे उपासकाध्यायनादि सूत्रों के वाक्य अन्यत्र पाये जाते हों तो उन परीक्षकों के पास ऐसी नियामकता भी क्या है कि ये उन्हीं के वाक्य हैं। अथवा वे वाक्य शायद हमारे न भी हों और उन वाक्यों में हमारा भाव पाया जाता हो तो वे भी हमारे क्यों नहीं। क्यों कि उपर्युक्त नीति (सर्व एव हि जैनानामित्यादि) हमको इस बात की आज्ञा देती है

कि वे हमारे ही हैं। तथा यज्ञोपवीतादि विधिके धारकों की न्यूनाधिकता का होना कालचक्र से जीवों के परिणाम तथा साधनसामिग्री की न्यूनाधिकता पर निर्भर है। अतः इन सब उपर्युक्त वाक्यों से निश्चत है कि यज्ञोपवीतादि संस्कारविधि आगमोक्त है।

अब हम को युक्तियों द्वारा भी इस विषय पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है क्योंकि युक्तिसंगत बात परीक्षा प्रधानियों को प्रायः विशेष मान्य होती है।

यज्ञोपवीत को **रत्नत्रयाँग मुपवीतेति** श्लोक में रत्नत्रयका कारण (साधन) बतलाया है। उसका तात्पर्य स्पष्ट है किकार्य संपादनमें उपादान और निमित्त दो प्रकार की शक्तियां होती हैं। उन में से उपादानता है वह भाव और द्रव्य दो धर्मों में विभक्त है। भाव और द्रव्य ये पदार्थ के धर्म हैं और निमित्त सहायक को कहते हैं। दृष्टान्त में जैसे कि मूंग में पचन शक्ति तो भाव है और मूंग द्रव्य है। उसमें निमित्त जल अग्निसंस्कार आदि हैं। कार्य है पाचनता की व्यक्तता। इसी प्रकार दार्ष्टान्त में भी—रत्नत्रयादि शक्तियां भाव और आत्मा द्रव्य और यज्ञोपवीत संस्कार आदि संस्कृतियां वहां निमित्त हैं। निमित्तको कहीं २ पर कोई २ आचार्य *द्रव्य भी कहते हैं। जैसे कि आशाधार प्रतिष्ठा पाठ में—

दृग्बोधचारित्रगुणत्रयेण धृत्वा त्रिधौपासिकभावसूत्रम्।
द्रव्यं च सूत्रं त्रिगुणंसुमुक्ताफलं तदारोपणमुद्वहामि ॥

---

*रत्नत्रयस्य तत्र (द्रव्ययज्ञोपवीते) संकल्पात् आधाराधेय भावतया उभयोः (यज्ञोपवीतरत्नत्रययोः) द्रव्यभावता क्रमेण।

यहां उसका तात्पर्य निमित्ततासे ही है परन्तु वह औपासिक (श्रावक) अवस्था में अवश्यंभावी होने से द्रव्य शब्द से निर्दिष्ट है। क्योंकि श्रावक अवस्था-असि, मसि आदि षट्कर्मों के निमित्त से अति प्रमादिक है इसलिये उसमें उसके धर्मों के उद्बोधक निमित्त की आवश्यकता है मुनिधर्म में वह बात न होने से उसकी ज़रूरत नहीं असलियत में यज्ञोपवीत श्रावकके योग्य रत्नत्रयकी उद्बोधकता का चिन्ह है अत: यज्ञोपवीत के समय कम से कम अष्ट मूल गुणरूप चारित्रका होना अवश्यंभावी है क्यों कि चारित्रकी शुरूआत या (प्रारंभता) वहीं से है इसलिये त्रिवर्ण सूचक यज्ञोपवीत भी वहांहै।

यज्ञोपवीत में मुख्य तीन लर होती हैं उसका तात्पर्य मुख्यता से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयकी उद्बोधकता से है परन्तु प्रत्येक के भीतर जो नव २ तन्तु रक्खे हैं उसका तात्पर्य यह है प्रत्येक (धर्मोद्बोधक तन्तु) कृत कारित अनुमोदना पुर: सर मन वचन कायकी सरलता को लिये नव २ बाड़का एक २ तागा होने से सब तागे सत्ताईस अंश प्रमाण हैं। उन तागों की ग्रन्थिरहित सरल शुभ्र स्वच्छ आदि शुद्ध अवस्था का वर्णन है। वह सिर्फ परणामों के सरल करने का उद्बोधक है।

और उन यज्ञोपवीतों में जो ब्रह्मग्रन्थि आदि गांठों का विधान है वह उस वर्णकी सूचकताकी निशानी है। अर्थात् जो एक गांठ है वह ब्राह्मणकी निशानी है। इसी तरह क्षत्रिय की दो और वैश्य की तीन। शूद्र पापकर्मा होते हैं इसलिये उनके यज्ञोपवीत का विधान नहीं।

शूद्रको यज्ञोपवीत संस्कार क्यों नहीं होता इसके लिये आगम प्रमाण। यथा—

अदीक्षार्हकुलेजाता विद्याशिल्पोपजीविनः ।
एतेषामुपनीत्यादिसंस्कारो नाभिसम्मतः ।

तथा युक्तिसे भी इनको उपवीत आदि संस्कार क्यों नहीं ? इस विषय का निरसन—धर्म शास्त्रों में यज्ञोपवीत धारण के बाद जो नियम बताये हैं उनसे स्पष्ट है । जैसे कि–पेशाव के समय कर्ण पर, टट्टी (झाड़े) के समय बाम कर्ण पर इत्यादि नियमों के विधान से पता लगता है कि वे सब अशुचि समय हैं इनमें यज्ञोपवीत किस प्रकार पवित्र रखना तथा अशुचिता आने पर किस प्रकार मंत्रादि पूर्वक पुनः धारण करना इत्यादि विधि अच्छी तरह समझा देनी है कि शूद्र की कोई भी अवस्था शुचिकी नहीं क्योंकि उसका शरीर एक तो अपवित्र शूद्रीय परमाणुओं से बना है दूसरे उसकी आजीविका भी उत्तम नहीं है इसलिये सर्वावस्था में अशुचि होने से शूद्र यज्ञोपवीत का अधिकारी नहीं ।

मुनि यज्ञोपवीत इसलिये नहीं धारण करते कि वे सांसारिक क्रियाओं से सर्वदा रहित हैं उनके जो कृत्य हैं वे सर्व रत्नत्रयस्वरूप हैं तथा उनकी जो चर्यावृत्ति हैं वे सर्व रत्नत्रय साधिका हैं तथा उनके प्रमाद भी बहुत अल्प है और ऊंचे दर्जे में उसका भी अभाव है ।

यज्ञोपवीत होमादि विधान पूर्वक मंत्र पुरस्सर जो धारण किया जाता है उसका हेतु यही है कि–उस विधि तथा मंत्रों से यज्ञोपवीत के धागों में वह शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि धारण करता की प्रवृत्ति प्रमाद तथा निंद्यकर्म से रोक कर उसे सुमार्ग में लगाती है । जैसे कि विधि पूर्वक मंत्रित गंडा तावीज आदि दृष्ट्यादि दोष जनित रोगों को रोक कर आरोग्यताकी रक्षा में सहायक होते हैं ।

विधिविधान जैसे २ महत्व के होंगे वैसे २ ये यज्ञोपवीतादि संस्कार भी आत्मगुणों की महत्ता संपादन के साधक होंगे इस में भी उपर्युक्त गंडे और तावीज का दृष्टान्त है।

यज्ञोपवीत की निरुक्तिसे उस विषय की सफलता।

यज धातुका अर्थ-देवपूजा, दान, सत्कृति (संयम) ये अर्थ होते हैं और उपवीत शब्द का अर्थ सूत्र होता है इन दोनों वाक्यों का मिलकर यज्ञनिमित्तक सूत्र यह अर्थ होता है यही निरुक्तिक अर्थ शास्त्राज्ञाओं में सर्व जगह संघटित होता है।

यथा—

सूत्रं गणधरैर्दृब्धं व्रतचिन्हं नियोजयेत्।
मन्त्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः॥
पूजादानादिसत्कर्म संध्यावंदनकं तथा।
सदा कुर्यात्स पुण्यात्मा यज्ञोपवीतधारकः।

नेमिचंद्र प्रतिष्ठा तिलक।

इसी प्रकार अन्य *आदिपुराणादिग्रन्थों में भी आज्ञा है कि जिन पूजन, जिनाभिषेक, दान, व्रत, लग्नसंस्कार वगैरह सत्कृत्योंमें

---

*आदिपुराण में जो प्रतिमाधारियों को ११ यज्ञोपवीततकका विधान है वह नैष्ठिकों की चर्या विशेष की उद्बोधकता का स्मारक तथा सूचक चिन्ह है। तथा अन्य पदोंमें भी जो विशेष २ यज्ञोपवीत का विधान है वह भी उनके विशेष २ पद तथा कार्यका स्मारक और सूचक चिन्ह है तथा विद्याध्ययन समय के ब्रह्मचारी का एक और सस्त्रीकको दो आदि यज्ञोपवीत जानने।

यज्ञोपवीत धारण करे। जिस प्रकार रत्नत्रय का चिन्ह यज्ञोपवीत है और वह हृदय में धारण किया जाता है उसी प्रकार उसी समयके अन्य चिन्ह मौंजीबंधनादि भी विशेष स्थानपर धारण किये जाते हैं। इस विषय का भी सविशेष वर्णन इस ग्रन्थ में है जैसे कि—स्वेत छत्र ध्वजा विशेषादि राजचिन्ह हैं उसी प्रकार रत्नत्रय का चिन्ह—यज्ञोपवीत, अणुव्रतका चिन्ह-कंकण, ब्रह्मचर्यका चिन्ह-मौंजीबंधन, विद्यार्थी का चिन्ह-शिखा (चोटी) और धोती दुपट्टा-स्वकुलोन्नतत्व निर्मलता के चिन्ह कहे हैं वे भी दानपूजादि सत्कर्म में धारण किये जाते हैं और इनका विधान प्राय: यज्ञोपवीत के साथ है मन्त्र जुदे २ हैं। तथा यह यज्ञोपवीत चिन्ह इन्द्र को भी कहा है उसका तात्पर्य यह है कि--इन्द्र सम्यग्दृष्टी होता है द्वादशांग का ज्ञाता तथा स्वरूपाचरणचारित्र का धारक है अत: उसके भी यह चिन्ह इस रत्नत्रय का द्योतक है इन्द्र और *देव भगवान के पूजक होते हैं अत: इस चिन्ह के अलावा उनके पूजक के और भी चिन्ह हैं तथा उनका वैक्रियक शरीर शुद्ध व निर्मल है इस विषयका द्योतक भी यह यज्ञोपवीत चिन्ह है। यहां भी इन्द्रचिन्हों को धारण कर अथवा केशरादि गंधद्रव्य से अपने शरीर में उन चिन्हों का निशाना बना कर जो पूजनादि सत्कर्म करता है वह इन्द्र के समान मान्य है।

थोडी देर के लिये इस मनुष्य पर्यायमें भी इन चिन्होंको धारणकर पूजक अवस्था में उत्कृष्ट इस इन्द्र उपाधि का मिलना क्या

---

*जिनपूजन करना देवमात्र का नियोग रूप कर्तव्य है और जिन पूजन में यज्ञोपवीत का विधान है अत: देव पर्याय में यज्ञसूत्र भूषण होने परभी पूजक का चिन्ह है। देवों के यज्ञसूत्र होताहै यह बात शास्त्रों में है ही।

कम बात है। मेरी समझ से तो इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि जो इन इन्द्र सम्बन्धी चिन्हों को धारण कर शुद्ध योगत्रय की तत्परतासे पूर्ण पूजक होता हैं वह भवान्तर में नियमसे इन्द्र होता है क्यों कि समर्थ साधन नियम से कार्य साधक होते हैं यह न्यायसिद्ध अटल सिद्धान्त है।

इस उपर्युक्त—आगम और युक्ति सिद्ध कथन से यह सहज ही सिद्ध है कि यज्ञोपवीतादि संस्कार कितने उपयोगी तथा मान्य हैं उनकी उपयोगिता और मान्यताही इनके अवश्यंभावी आवश्यक पनेको सिद्ध करती हैं।

श्री १०५ क्षुल्लक ज्ञानसागरजी महाराज का संक्षिप्त परिचय

आप आगरा शहर के निकट चावली ग्राम के श्रीयुत लाला तोतारामजी के पुत्र और पं० लालारामजी तथा पं० मक्खनलालजी के भाई हैं आपके एक जयकुमार नामक लड़का है जो कि गोपाल दि० जैन विद्यालय मोरेना में विद्याभ्यास कर रहा है। आपकी स्त्री के देहान्त के वाद संसार से आप उदासीनसे रहते थे वाद श्री १०८ गुरु *शान्तिसागरजी आदि मुनिवर्गके सहवास से एकादश प्रतिमाधारक

---

*यह बड़ेही आनंद का विषय है कि इस समय आचार्य महाराज यज्ञोपवीतादि विशेष विधियोंका विशेषता से प्रचारकर रहे हैं कर्नाटक देश में यह प्रचार अविछिन्नरुपसे आजतक चला आरहा है परन्तु उत्तर प्रान्त में मुसलमानी राज्य के समय से यज्ञोपवीतादिका प्रचार रुकगया था उसी को फिर प्रवर्तित करने का श्रेय महाराज ले रहे हैं यह उत्तर प्रान्तके जैनियों के लिये महाराज का इस समय एक अति उपयोगी और प्रशंसनीय कार्य है।

उत्कृष्ट श्रावक होकर मुनि संघ के साथ विहार कर रहे हैं आपने इस चर्याके पूर्व अपना जीवन विद्यापठन पाठन तथा सरस्वती सेवन में व्यतीत किया था अब त्यागी होकर मनुष्य जन्मको सफल कर रहे हैं यह एक बात सोने में सुगंधि के समान है क्योंकि इस जमाने में पंडित होकर त्यागीपनेका दर्जा आप में ही है। आपने इस पुस्तक के अलावा और भी कई पुस्तकें लिखीं हैं तथा जैन पत्रों में आपके लेख भी हमेशा प्रकाशित होते रहे हैं इससे पाठक स्वतः ही निश्चित कर सकते हैं कि समाज में आप कैसे लेखक तथा विद्वान हैं। आप का और विशेष गुण गान करना पिष्टपेषण के समान है क्योंकि समाज प्रायः आपसे परिचित है। भविष्यकी जनता भी आपसे परिचित रहे इस लिये यह (संक्षिप्त परिचय) कुछ विशेष सफल है।

निवेदक—
रामप्रसाद जैन शास्त्री, बम्बई।

श्रीवीतरागाय नमः ।

धर्म और सन्मार्गका स्वरूप ।
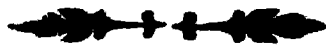
वेदः पुराणं *स्मृतयश्चारित्रं च क्रियाविधिः
मन्त्राश्च देवतालिंगमाहाराद्याश्चशुद्धयः ।
एतेषां यत्र तत्वेनप्रणीताः परमर्षिणा
स धर्मः स च सन्मार्गस्तदाभासाः स्युरन्यथा ।

भावार्थ—जिस भव्यजीव की गाढ़ श्रद्धा—प्रथमानुयोग चरणानुयोग करणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार वेदों पर है। समस्त वेदों को प्रमाणरूप सत्य मानता है। वेदों में से एक अक्षर पर भी जिसका संदेह सर्वथा नहीं है। पुराणों को जो जिनागम समझता है। स्मृतिग्रन्थों को आज्ञा विधायी (स्मृतिग्रन्थ सर्व क्षेत्र सर्व काल में अविच्छिन्न रूप से नियमित रूप रहते हैं) शास्त्र समझता है जो चारित्र का पालन करता है। जो भोजनशुद्धि, पिंडशुद्धि यज्ञोपवीतादि संस्कार की क्रियाओं का पालन करता है। मन्त्र से

---

*स्मृतिग्रन्थ से संहिताग्रन्थ—भद्रबाहुसंहिता आदि सर्व ग्रन्थ, और वर्णाचारग्रन्थ—त्रिवर्णिकाचारआदि मान्य ग्रन्थ

जो शुद्धि करता है। देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान करता है। आहारादि शुद्धि का पालन करता है वही धर्म को धारण करने वाला है वही सन्मार्गगामी है। जिसके उक्त कार्यों का विचार नहीं है वह मिथ्या दृष्टी है। क्योंकि गणधरदेव ने उक्त समस्त आचरण धर्म रूप बतलाये हैं। आदिपुराण।

सम्यक्त्व और सम्यग्दृष्टी।

पुराण स्मृतिसंभूतविशुध्या करणत्रयात्।
सम्यक्त्वमादिमं प्राप्य शांतसप्तमहारजः।

(उत्तर पुराण)

भावार्थ—जिसको पुराण ग्रन्थों की विशेष दृढ़ श्रद्धा से विशुद्धि प्राप्त हुई हो वह करणत्रय को प्राप्त हो कर प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है इसी प्रकार जिसका स्मृति ग्रन्थों का (आज्ञा—त्रिवर्णाचार शास्त्रों का) पूर्ण श्रद्धान है। स्मृति ग्रन्थों की आज्ञा को जिनागम की मुख्य आज्ञा मान कर अपना चारित्र-अपने आचरण अपना खान पान—अपना विवाह—अपना कुलधर्म—और अपने समस्त कर्तव्य स्मृति ग्रन्थों की आज्ञा से तदनुसार करता है उसको नियम से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है।

जिसके स्मृति ग्रन्थप्रमाण है। और जिस को स्मृत्तिग्रन्थों की आज्ञा ही धर्म है चारित्र है ऐसी दृढ़ श्रद्धा है वह सम्यग्दृष्टी है आसन्न भव्य है और निर्वाणार्ह है।

यज्ञोपवीत-विचार।

यज्ञोपवीत धारण करने का कारण।

इस जीवने अनादि काल से बड़ी २ मलिन पर्यायें धारण की हैं। जिसके कारण जीव के विशुद्ध गुणोंमें भी विशेष मलिनता प्राप्त हो गई है। जैसी २ मलिन पर्याय इस जीव को प्राप्त होती है, वैसे २ कर्मों का विशेष आवरण—आत्मगुणों में मलिनता प्राप्त करता है।

जब तक सांसारिक पर्यायों का धारण करना है तब तक जीव को मलिनता नियम से है ही। अशुद्धता अशुद्ध पर्याय के धारण करने से जीव को प्राप्त हुई है। संसारी जीव अशुद्ध जीव कहलाते हैं। और वह अशुद्धता अशुद्ध पर्याय धारण करनेसे ही है। सिद्ध जीव परम विशुद्ध और परम निर्मल हैं कारण एक यही है कि सिद्ध जीवों की अशुद्ध पर्याय का धारण करना सर्वथा नष्ट होगया है। वे सब प्रकार के द्वंद्वोंसे निर्मुक्त होगएहैं, इसी लिये अमूर्तीक, अविनाशी निरंजन पद को प्राप्त होचुके हैं। इसलिये जीवों को संसारी पर्यायों का धारण करना मलिनता और अशुद्धता का कारण है।

संसारी जीवों को मलिनता के कारण राग द्वेष भी हैं। जिन जीवों को मोह क्रोध मान माया लोभादि रूप विषयकषायों की विशेष उग्रता है। परिणामों में जिनके विशेष मोहादिदुर्भावों की कलुषता है उन जीवोंको ही मलिन पर्याय अधिकतर प्राप्त होती हैं। नवीन पर्याय धारण करने के कारण जीवों के मोहादिरूप दुर्भाव अधिक होते हैं।

नरक गति में—इस जीवको कैसी मलिन पर्याय प्राप्त होती है अशुभ वीभत्स और ग्लानि पूर्ण वैक्रियक शरीरमें जीवों को अपनी

स्थिति बहुत काल पर्यन्त व्यतीत करनी पड़ती है। वैतरणी नदी में पीव रुधिर मलमें रहना पड़ता है।

तिर्यंच गतिमें—यह जीव विष्टा का कीड़ा होता है। उदरमें-कृमि होता है मांस पर्याय में प्राप्त होता है घिनावनी वीभत्स मलिन पदार्थोंकी खानि ऐसे ग्लानि पूर्ण (अशुचि स्थानमें) पर्यायमें निरंतर रहना पड़ता है।

इस जीव ने राग द्वेष और मिथ्यात्त्वके कारण सदैव मलिन पर्याय धारण की, स्त्री के रज में कीटाणु उत्पन्न हुआ। रुधिर पीव आदि अपवित्र स्थानों में निरंतर उत्पन्न हुआ। मलिन देह को धारण करने वाला हुआ। इस प्रकार यह जीव अनादिकाल से प्राय: मलिन पर्यायों को धारण कर रहा है।

मलिन पर्यायमें जीवों को शुभकर्मों का उदय भी नहीं होता है और न शुभकार्य करने की योग्यता ही प्राप्त होती है। जिससे वह अपने भावों को विशुद्ध बना सके। और मोक्षमार्ग की अधिकारिता प्राप्त कर सके।

जिस समय जीव संस्कारों के द्वारा विशुद्धताको प्राप्त होता है और आगमके अनुकूल अपने पवित्र आचरण करता है। अपने समस्त कर्तव्य चरित्र (सदाचार) रूप आदर्श बनाता है उस समय ही जीवके क्षमा-संतोष-मृदुता-सरलता-सत्यता-ब्रह्मचर्य-त्याग-संयम-दान-तप-जिनआराधन आदि गुण प्रकट होते हैं। उसी समय यह जीव सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-और सम्यक्चारित्ररूप आत्मीय विशुद्ध गुणों से व्यक्त होता है।

मलिन पर्यायमें-संस्कारोंके अभाव होने से जीवोंको मोक्षमार्ग की अधिकारिता प्राप्त नहीं होती है। इसीलिये संस्कार विहीन मलिन

पर्यायें दुःख और संसार के कारणभूत मानी गई हैं और मोक्षको प्राप्तिके लिये अयोग्य मानी गई हैं।

मलिनपर्यायोंका असर अनेक पर्याय तक होता है। एक मलिन पर्यायमें यह जीव मोहादिक दुर्भावोंसे ऐसेकर्मबंध करता है कि जिससे अनेक भवपर्यंत मलिन पर्याय धारण करनी पड़ती है। और उन मलिन पर्यायों का असर परंपरा से बहुत कालपर्यंत रहता है।

मलिन पर्यायमें जीवोंके गुणोंमें मलिनता नियमसे प्राप्त होती है।

सुखासुखं बलाहारौ देहावासौ च देहिनां
विवर्तन्ते तथा ज्ञानं दृक्शक्ती च रजोजुषाम् ।

मलिन कर्मों के उदय से जीवोंको सुख दुख बल आहार शरीर घर आदि बदल जाते हैं। अशुभरूप प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार मलिनता के कारण दर्शन ज्ञान आदि गुणों में मलिनता प्राप्त हो जाती है।

मलिन पर्याय में-जीवोंको मोहादिक (क्रोध मान-माया-लोभ) दुर्भाव विशेष रूपसे उदय होते हैं। जिससे जीवोंके गुणों में विशेष रूप से क्षोभ होता है। भगवान श्री जिनसेनाचार्यने कहा है कि—

क्षुभितत्वं च संक्षोभः क्रोधाद्याविष्टचेतसः
भवेद्विविधयोगोस्य नानायोनिषु संक्रमः।

भावार्थ—क्रोधादिक दुर्भाव ही जीवोंके गुणोंमें संक्षोभता और असामर्थ्यको प्राप्त करते हैं। जिससे जीवोंको अनन्त योनिमें भ्रमण कराने के कारण मलिन योग (पर्याय) प्राप्त होते हैं।

इसलिये आगम में श्री जिनेन्द्र भगवानने बतलाया है कि—इस जीवको जैसी २ संस्कारों से विशुद्ध उत्तम पर्याय प्राप्त होगी वैसे ही जीवों के राग द्वेष मोहादिक दुर्भाव नष्ट होते जाँयगे और आत्मा के गुणोंका विकाश होता जायगा।

महान् पुण्यशाली जीवोंको भी अपने गुणों के विकाश करने के लिये सज्जाति आदि सप्त परम स्थानकी प्राप्ती बार बार करनी पड़ती है। वे लोग अनादिकाल से प्राप्त हुई मलिन पर्यायों के निमित्त से होने वाले मलिन संस्कारों को दूर करने के लिये सज्जाति आदि सप्त परमस्थानों की सिद्धि के अर्थ अनेक भव तपश्चरण करते हैं।

श्रीतीर्थंकरादिक के जीवों ने विशुद्ध संस्कार वाली उत्तम पर्याय प्राप्त करने के लिये कितने भवमें कितने दुर्लभ प्रयत्न किये हैं। अनेकवार घोर तपश्चरण किये, जिन पूजन की, दान दिये, उत्तम व्रत पालन किये, विशुद्ध भावों से जिन धर्म सेवन किया, इस प्रकार अनेक भव पर्यंत विशुद्ध संस्कारवाली उत्तम सज्जातिवाली पर्याय धारण करने का निरंतर उद्योग किया।

जिस प्रकार सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिये पंचेन्द्रिय और संज्ञी होना परमावश्यक है। उसके विना सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता ही जीवों को प्राप्त नहीं होती है। एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय और चार इन्द्रिय पर्यायमें सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेकी योग्यता ही नहीं है कितना ही प्रयत्न किया जाय परन्तु इन पर्यायोंमें सम्यग्दर्शन प्राप्त होना सर्वथा ही असंभव है। इसी प्रकार असंस्कारित कुलमें और मलिन पर्यायमें मोक्ष मार्गता सर्वथा असंभव है इसीलिये आगम में श्रावक के कुलकी प्राप्ति होना महान् दुर्लभ वतलाई है। अनेक भव

प्रयत्न करने पर जीवों को संस्कार से विशुध्द श्रावकके कुलकी प्राप्ति होती है।

संस्कारित शरीर का प्राप्त करना महान् दुर्लभ है। महान् पुण्योदय से भव्य जीवोंको प्राप्त होता है। मोक्षमार्गमें सबसे अधिक उपयोगिता संस्कारित शरीर की प्राप्ति होना है।

भोगभूमिजीवों की अपेक्षा विचार किया जाय तो भोगभूमि जीवों (मनुष्यों) को सर्व प्रकार की निराकुलता धैर्य सुखसाता कषायों की मंदता और शरीर का बल आदि समस्त कारण सत्तमोत्तम होते हैं। तो भी भोगभूमिजीवों में संस्कारों का अभाव होनेसे मोक्षमार्गता व्यक्त नहीं होती है। इसीलिये मोक्षमार्ग कर्मभूमि में ही प्रकट होता है। भोगभूमिमें नहीं।

म्लेक्ष खण्डमें सदैव चतुर्थकालका चक्र रहता है म्लेक्ष खण्डमें क्षत्रिय–वैश्य-और शूद्र हैं। क्षत्रिय और वैश्य कुलीन होते हैं परन्तु वहां पर भी संस्कारोंका अभाव होने से म्लेक्षखण्डमें मोक्षमार्गता प्रकट नहीं है।

ज्ञानकी वृध्दिसे भी मोक्षमार्गता नहीं है। इन्द्र एकादश अङ्ग का जानने वाला है। सम्यग्दृष्टि भी है। परन्तु इन्द्रको ऐसी पर्याय नहीं हुई है कि जिसमे षोडश संस्कार हों। इसीलिये इन्द्र पर्यायमें भी मोक्षमार्गता व्यक्त नहीं है।

जिस कुलमें संस्कार होते हैं ऐसे कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यही मोक्षमार्गता प्राप्त कर सकते हैं।

इस जीवने ब्राह्मणका कुल अनेक बार प्राप्त किया परन्तु मिथ्या मतसे संस्कारित होनेसे उस कुलमें मोक्षमार्गता नहीं है। मिथ्यादृष्टि

जीवको मिथ्या धर्मके प्रभाव से विशुद्ध संस्कारोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती है जब तक वे मिथ्या मतका परित्याग नहीं करें । इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्योंके ऐसे कुल जिनमें मिथ्या धर्मका सेवन हो रहा है ऐसे कुलों में विशुद्ध संस्कारों के अभाव से मोक्षमार्गता सर्वथा नहीं है।

शूद्रको मोक्षमार्गता सर्वथा नहीं है। शूद्रको षोडश संस्कारों का अभाव है। पूर्व जन्मके पापकर्म के निमित्त से उनको ऐसी मलिनपर्याय नीचगोत्रके उदय से प्राप्त होती है कि जिससे उनमें मोक्षमार्गता व्यक्त की शक्ति का ही सर्वथा अभाव होता है। जिस प्रकार प्रयत्न करने पर भी शुक्लध्यानकी योग्यता द्रव्य स्त्री पर्यायमें सर्वथा नहीं है। उसी प्रकार शूद्रको भी मुनिव्रत धारण करने की योग्यता न होने से मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अधिकार नहीं है।

शूद्रके संस्कारों का अभाव है फिर मोक्षमार्गता किस प्रकार व्यक्त हो सकती है? शूद्रको मोक्षमार्ग को अधिकारिता का निषेध आगम ग्रन्थोंमें स्पष्ट बतलाया है।

शूद्र प्रकरण पत्र २८ (कर्णाटक ताड़पत्र) स्मृतिसार पृष्ठ २८

पिण्डशुद्धेरभावत्वात् मद्यमाँस निषेवनात् ।
सेवादिनीच वृत्तित्वात् शूद्राणां संस्कारो न हि ॥

भावार्थ—शूद्र को संस्कार (यज्ञोपवीतादि संस्कार) क्यों नहीं होते हैं? इस प्रश्नका उत्तर आचार्य महाराज तीन हेतुओं (कारण) से बतलाते हैं— "शूद्र के पिंड शुद्धि नहीं हैं। पुनर्विवाह और धरेजा आदि की पद्धति शूद्रों में वंश परंपरागत होने से शूद्रों का पिंड ही शुद्ध नहीं होता है। पिंड की शुद्धि के बिना संस्कारों की व्यवस्था

जिनागम में सर्वथा नहीं बतलाई है। शूद्र के जन्म से मरण पर्यन्त नीच गोत्र का उदय उसकी पर्याय के साथ साथ निरंतर बनाही रहता है इस लिये भी शूद्र के पिंड शुद्धि कदापि किसी प्रकार नहीं होती हैं।

दूसरा कारण—शूद्रों में बाहुल्यता से मद्य मांस आदि वस्तुओं (जो सम्यग्दर्शन गुण को सर्वथा नष्ट कर पिंडशुद्धिमें विघातक होती हैं) के सेवने का प्रचार भी वंशानुगत है ही। इसलिये भी शूद्रों के संस्कारों का अभाव मानागया है।

तीसरा कारण—शूद्रों की आजीविका सेवादि नीचहिंसा जनक—और पापमय हिताहित के विवेक रहित है इसलिये भी शूद्रों को जिनागम में संस्कार नहीं माने हैं। और न शूद्र की संतान को संस्कार करने कराने का अधिकार है। संस्कारों के अभाव से शूद्रों को मुनिलिंग धारण करने का भी अधिकार सर्वथा नहीं है।

इसी ग्रन्थ में सज्जातिका सामान्य निरूपण करते हुए बतलाया है कि—

पिंडशुद्धिसुमूलैका कुलजात्योर्विशुद्धता।
संतानक्रमेणायाता सा सज्जातिः प्रगद्यते॥

भावार्थ—सज्जाति सप्त परम स्थानों में मुख्य मानी है। यदि सज्जाति की प्राप्ति है तो सप्त परम स्थानों को प्राप्ति है। यदि सज्जाति की प्राप्ति नहीं है तो सप्त परम स्थानों को भी प्राप्ति नहीं है।

जिस के वंश परंपरागत (पीढी दर पीढी) कुल (पिता के वीर्य की शुद्धि) शुद्धि है। और इसी प्रकार वंश परं परागत

जाति (माता के रज की शुद्धि) की विशुद्धता है उसको सज्जाति कहते हैं। इस सज्जाति से पिंडशुद्धि सांगो पांग होती है इस प्रकार माता पिता के रजो वीर्य की विशुद्धि वंश परंपरागत नियम रूप से चली आरही है उसके पिंड शुद्धि अविच्छिन्न रूप से नियमित होती है

सज्जाति मोक्षमार्ग के प्रकट करने के लिये प्रधान कारण मानी है। और जिनके पिंड शुद्धि है उनके ही सज्जाति है। जिन के पिंड शुद्धि नहीं हैं उनके सज्जाति भी नहीं है। इसलिये सज्जाति की प्राप्ति के लिये पिंड शुद्धि मूल कारण मानी है।

शूद्र के पिंड शुद्धि सर्वथा नहीं है। जो लोग स्त्रियों का पुनर्विवाह करते हैं उन के कुल शुद्धि और जाति शुद्धि का सर्वथा अभाव है। इसलिये पुनर्विवाह धरेजा आदि करने वालों के पिंड शुद्धि सर्वथा नहीं है।

जो लोग विजातीय विवाह करते हैं—उनके भी कुल जाति की विशुद्धता नष्ट हो जाती है। इसलिये विजातीय विवाह करने वालों के भी पिंड शुद्धि का सर्वथा अभाव है। इस प्रकार पिंड शुद्धि के अभाव से सज्जाति का अभाव हो जाता है। और सज्जाति के अभाव से संस्कारों का अभाव तथा मोक्ष मार्गता का भी अभाव हो जाता है।

दशा—पतित—गोलक आदि संतानों के सज्जाति का अभाव है इसलिये दशाओं को संस्कार नहीं होते हैं। और इसलिये दशाओं को भी जिनेंद्रदेव की मूर्ति का प्रक्षाल करने का तथा जिनलिंग धारण करने का अधिकार सर्वथा नहीं है।

संस्कारों के अभाव से दशा मुनिगणों को अहार दान भी नहीं दे सक्ता है।

शूद्रों के पिंड शुद्धि नहीं होने से दान—पूजा—संस्कार—जिनलिंग दीक्षा—और सज्जाति के अधिकार नहीं है।

शूद्रों को जिनलिंग धारण करने का अधिकार क्यों नही है ? इस प्रश्न का खुलासा भी स्मृतिसार में बतलाया है —

पौनपुर्नर्विबाहत्वात् पिंडशुद्धे रभावतः ।
ऋत्वादि सुक्रियाभावात् तेषु न मोक्षमार्गता ॥

भावार्थ— शूद्रों के स्त्रियों का पुनर्विवाह (धरेजा-विधवा विवाह) होने से मोक्ष मार्गता नहीं है। शूद्रों के पिंड शुद्धि का अभाव होने से भी मोक्ष मार्गता नहीं है। शूद्रों के ऋतु धर्म की क्रिया एवं सूतक पातक की विशुद्धता नही है इसलिये भी शूद्र मोक्षमार्ग का अधिकारी नहीं है जिन को मोक्षमार्गता (जिन लिंग दीक्षा धारण करने का अधिकार) का अधिकार नहीं है। उनको यज्ञोपवीतादि संस्कार एवं दानपूजा आदि उत्तम कर्मों के करने का भी अधिकार नहीं है।

आगम में शूद्र के पिंडको अयःपिंड बतलाया है कदाचित् कोई आगम की आज्ञा का तिरस्कार कर शूद्र को संस्कार कराने लगजाय तो वह शूद्र लोहे के पिंड के समान कभी भी किसी प्रकार भी स्वर्ण भाव को प्राप्त नहीं होगा। लोहा का पिंड स्वर्ण नहीं हो सकता है इसी प्रकार शूद्र भी उज्वल भेष भूषा और चारित्र पालन करने पर भी संस्कारों के योग्य एवं जिन लिंग धारण करने के योग्य नहीं होता है क्योंकि— उसके नीच गोत्र का उदय होने से उसके भावों

में वह शक्ति व्यक्त नहीं होती है जिस से संस्कारों के योग्य विशुद्धता को वह प्राप्त हो सके। इसी प्रकार उसके नीच गोत्र के उदय से उसके शरीर पिंड में उन विशुद्ध परमाणुओं का अभाव है जिस से उसकी आत्मा विशुद्ध भावों को धारण कर जिन लिंग धारण करने की योग्यता प्रकट कर देवे। इन सब कारणों से आचार्यों ने बतलाया है कि —

चरित्रेष्वपि शूद्रेषु संस्कारस्य न योग्यता।
समुद्दीपितेयः पिंडे स्वर्णत्वं नाभिगच्छति ॥

भावार्थ—शूद्र कितनी ही उज्वलता धारण करे और अपनी शक्ति के अनुसार कितना ही जिन धर्म का चारित्र पालन करे तो भी शूद्र को संस्कारों की योग्यता उस पर्याय में कदापि नहीं हो सक्ती है लोहा कितना ही उज्वल किया जाय परन्तु लोहा स्वण नहीं हो सक्ता है।

शूद्र का पिंड नीच गोत्र के उदय से ऐसा बना है कि उसकी आत्मा में विशुद्धता के भाव जाग्रत ही नहीं होसके। जिस प्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के भाव सवथा नहीं होते हैं उसी प्रकार शूद्र के भाव भी संस्कारों के योग्य नहीं होते हैं।

प्रश्न—यदि शूद्र जैन धर्म धारण कर लेवे और खान पान शुद्धता पूर्वक करे तो उसके संस्कार क्यों नहीं किये जांय ? अथवा उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार क्यों नहीं प्रारम्भ किया जाय ?

उत्तर—जैन धर्म को प्रत्येक प्राणी धारण कर सक्ता है। जैन

धर्म यह सार्व धम (समस्त जीव मात्रों का धर्म) है । मान्व धर्म है इस लिये शूद्र भी जैन धर्म धारण कर सक्ता है। परन्तु जैन धर्म धारण करनेसे पिंड शुद्धि नही होती है। पिंड शुद्धि तो पूर्व भव में संपादन किये पुन्योदय से ऊंच गोत्र की प्राप्ति से होती है। जिनके पूर्व भव के महान पुन्योदय से ऊंच गोत्र का उदय है और उस ऊंच गोत्र के उदय से विशुद्ध परमाणु वाला पिंड प्राप्त किया है। माता पिता के रजो वीर्य की विशुद्धि वाले योनि स्थान में विशुद्ध शरीर को प्राप्त किया है। उस भव्यात्मा के ही पिंड शुद्धि मानी है। यह पिंड शुद्धि एक पर्याय में शरीर की स्थिति के साथ साथ रहती है। ऊंच गोत्र अथवा नीच गोत्र एक पर्याय में बदलता नहीं है। शूद्र के पूर्व भव के पाप कर्म के उदय से नीच गोत्र की प्राप्ती हुई है वह उसकी उस शूद्र की पर्याय में किसी प्रकार बदल नहीं सकती है। चाहे जैन धर्म धारण करो अथवा नहीं ? चाहे सफाई से रहो चाहे मद्य मांस त्याग कर पंच अणुव्रत भी धारण करो परन्तु पूर्व भव के पाप कर्म के उदय से प्राप्त हुआ नीच गोत्र द्वारा मलिन पिंड कभी भी शुद्ध नहीं हो सक्ता है।

जिनागम में यही बतलाया है देखिये—मोक्ष मार्ग प्रकाश पृष्ट ८६ " कुल कितेक काल रहे ? पर्याय छूटे कुल की पलटन हो जाय,, भावार्थ ऊंच गोत्र अथवा नीच गोत्र का उदय एक पर्याय पर्यन्त नियम से रहता है उस पर्याय में किसी प्रकार बदल नहीं सक्ता है।

भगवान पूज्यपाद आचार्य ने भी यही बतलाया है कि गोत्र कर्म का उदय शरीर नाम प्रकृति के साथ रहता है जब तक एक शरीर है पर्याय है तब तक उस पर्याय में नियम रूप से प्राप्त गोत्र कर्म का उदय रहेगा।

प्रश्न—जिस प्रकार नीच गोत्र का उदय शूद्र पर्याय में मरण पर्यन्त नहीं बदलता है उसी प्रकार ऊंच गोत्र का उदय ऊंच कुल में मरण पर्यन्त नियमित रहता है या बदल भी सक्ता है। जो बदलता नहीं है तो दशा—पतित और दशा गोलक आदि के ऊंच गोत्र का ही उदय होना चाहिये? फिर दशा आदि को संस्कार करने में क्या हानि है? जो ऊंच गोत्र का उदय एक पर्याय में बदल जाता है तो शूद्र को भी बदल जाना चाहिये शूद्र भी जैन धर्म धारण करने से और अच्छे काम करने से ऊंच गोत्री हो सक्ता है?

ऊंच गोत्र का उदय यद्यपि मरण पर्यन्त रहता है तो भी ऊंच गोत्र वाला मनुष्य कदाचित अति निंद्य कार्य कर लेवे तो उसका ऊंच गोत्र अवश्य ही बदल जायगा जैसे ऊंच गोत्र वाला एक ब्राह्मण मांस खाने लग जाय और चांडालिनी को घर में डाल लेवे या उसके साथ विवाह कर लेवे तो वह ब्राह्मण अवश्य ही पतित हो जायगा। परन्तु नीच गोत्र वाला चांडाल आदि शूद्र कितना ही उत्तम कार्य करे—जैन धर्म धारण कर लेवे—पांच अणुव्रत भी धारण कर लेवे तो भी उसका नीच गोत्र का उदय उस पर्याय में किसी भी प्रकार बदल नहीं सक्ता? शूद्र से वह ऊंच गोत्री उस पर्याय में नहीं हो सक्ता है? यही बात श्रीमान् पंडित प्रवर टोडरमल जी ने मोक्ष मार्ग प्रकाश में बतलाई है। ऊंच कुल वाले को नीचा होने का भय है परन्तु नीच कुल वाले को नीचपने का दुःख ही है। भावार्थ नीच कुल जन्म पर्यन्त रहता है। किसी भी कारण से बदलता नहीं है परन्तु ऊंच कुल वाला यदि बीभत्स कार्य करे तो उसको ऊंच कुल के छूटने का भय अवश्य ही है।

शरीर की सफाई उजले वस्त्र वेष भूषा से नीच कुल नहीं छूटता है इसलिये शूद्र के लिये संस्कार और मोक्षमार्गता का अधिकार जिनागम में नहीं बतलाया है।

मोक्षमार्ग प्रकाश पत्र २०८ " नीच कुल वाले के उत्तम परिणाम नहीं होय सके बहुरि नीच गोत्र का उदय तो पंचम गुणस्थान पर्यन्त ही है। .... जो कहोगे संयम धारे पीछे वाके ऊंच गोत्र का उदय कहिये तो संयम धारणे की वा न धारणे की अपेक्षा तें ऊंच गोत्र कर्म का उदय ठहरा "

भावार्थ—गोत्र कर्म का उदय शरीर पिंड के साथ साथ पूर्व भव के पाप पुण्य फल से प्राप्त होता है शूद्र के नीच गोत्र का उदय शरीर पर्यन्त रहता है इसलिये शूद्र के परिणाम नीच गोत्रके उदय से उत्तम नहीं हो सकते ? संयम धारण करने से गोत्र कर्म का उदय नहीं है शूद्र भले ही संयम धारण करे—ऊपरी भभकाव सफाई धारण करे और जैन धर्म धारणकरे तो भी उसके ऊंच गोत्र कर्मका उदय नहीं होता है। गोत्र कर्म का उदय पूर्व भव के पाप पुण्य के उदय से होता है जैन धर्म धारण करने से नहीं। यही बात तत्त्वार्थ सूत्र में बतलाई है। सद्वेद्य शुभायुर्नाम गोत्राणि पुण्यं,, " अतो न्यत्पापम् " भावार्थ सातावेदनी शुभ आयु शुभ नाम और ऊंच गोत्र का उदय पुण्य कर्म के उदय से ही होता है ऊंच गोत्र की प्राप्ति पुण्य कर्म का फल है और नीच गोत्र की प्राप्ति पाप कर्म का फल है ।

कदाचित गोत्र कर्म का उदय पुण्य पाप के फल से नहीं मानकर संयम धारण करने की अपेक्षा से माना जाय तो तीर्थ करो ने जब संयम धारण किया तब ऊंच गोत्र मानना पडेगा सो यह

बात जिनागम में नहीं मानी है मोक्षमार्ग प्रकाश पत्र २०८ में लिखा है कि "जो उनके (तीर्थंकरादिक पुण्य पुरुषों के) कुल अपेक्षा ऊंच गोत्र कहोगे तो चांडालादि (शूद्र) के भी कुल अपेक्षा नीच गोत्र का उदय कहो। भावार्थ तीर्थंकरादिक पुण्य पुरुषों को पूर्व भव के ऊंच गोत्र के उदय से ऊंच कुल (इक्ष्वाकु वंश काश्यप गोत्र) की प्राप्ति हुई है इसी प्रकार चांडालादि शूद्रों को भी पूर्व भव के पाप कर्म के फल रूप नीच कर्म के उदय से नीच कुल की प्राप्ति हुई है न कि जैन धर्म धारण करने से।

जैन धर्म तो पशु भी धारण करते हैं—और उत्तम निर्दोष चरित्र पालन करते हैं परन्तु पशुओं के नीच गोत्र का उदय होने से मुनि धर्म नहीं माना है। और न पशुओं के साथ रोटी बेटी व्यवहार माना है।

जो जैन धर्म धारण करता हो उसके साथ रोटी बेटी व्यवहार करना ही चाहिये ऐसी जिनागम में कहीं भी आज्ञा प्रदान नहीं की है। जो भाई जैन धर्म धारण करने के साथ रोटी बेटी व्यवहार मानते हैं उनको आज्ञानुविधायी शास्त्र का प्रमाण प्रकट करना चाहिये। परन्तु कोई भी विचार शील व्यक्ति आजतक एक भी प्रमाण बतलाने में सर्वथा समर्थ नहीं हुआ।

मरू भूति के जीव ने हाथी की पर्याय में जैन धर्म धारण किया था पांच अणुव्रत भी धारण किये थे परन्तु फिर भी उसके नीच गोत्र बदल कर ऊंच गोत्र नहीं हुआ और न हाथी को मुनिराज ने संस्कार ही कराये। पार्श्व पुराण—" अब हाथी संयम साधे त्रसजीवनि नाहिं विराधे" इस प्रकार हाथी के साथ जैन धर्म

धारण करने पर भी किसी भाई ने रोटी बेटी व्यवहार प्रारंभ नहीं किया।

सिंह बन्दर कुत्ता शूकर आदि अनेक पशुओं ने जैन धर्म धारण कर मद्य मांस का परित्याग किया पांच अणुव्रत भी धारण किये परन्तु उन पशुओं के संस्कार किसी मुनि ने व्रत देते समय नहीं कराये और न रोटी बेटी व्यवहार साथ २ करने की आज्ञा ही दी।

रोटी बेटी लेने देने को लोग व्यवहार कहते हैं परन्तु यह एक प्रकार की प्रतारणा है। मुनिराज को रोटी (आहारदान) देते हैं। यह क्या व्यवहार है ? यदि व्यवहार है तो तीर्थंकरों ने मुनि अवस्था में आहार ग्रहण कर क्यों व्यवहार की प्रवृत्ति की ? और देवों ने क्यों पंचाश्चर्य प्रकट किये ? और जिन ने आहार दान दिया उन भव्यआत्माओं को भोग भूमि अथवा निर्वाणपद क्यों प्राप्त हुआ।

कितने ही मुनियों को भोजन ग्रहण करने में सातवें गुण-स्थान की प्राप्ति बतलाई सो व्यवहार से मुनिराज को ऐसी परम विशुद्धि किस प्रकार होगी ?

चौका की शुद्धि अथवा भोजन क्रिया यह व्यवहार नहीं है। किन्तु परमोत्कृष्ट धर्म है। जिस भव्यजीव के भोजन की शुद्धि प्रवृत्ति है उसके ही वास्तविक सत्य जिन धर्म की प्राप्ति है।

इसी प्रकार बेटी का लेना देना (विवाह कार्य) को व्यवहार माना जाय तो विवाहादि संस्कारों का अभाव होने से सज्जाति का अभाव होगा जिस से किसी भी जीव को मोक्षमार्गता नहीं होगी। विवाह क्रिया समदत्ति में बतलाई है। और धार्मिक कृत्यों में मुख्य

मानी गई है। म्लेक्षखंड में विवाह संस्कार पूर्वक नहीं होता है इस-लिये वहां पर मोक्षमार्गता नहीं है। जिन २ देशों में विवाह को व्यवहार माना है वहां पर अन्याय अत्याचार व्यभिचार और अधर्म की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल है।

जो विवाह को व्यवहार बतलाते हैं वे सत्य जैन धर्म का लोप कर अपने स्वार्थ के लिये मिथ्या कल्पना करे तो उसको ही मिथ्यात्वका कर्म बन्ध होगा।

जिनागममें—अपनी जाति में ही विवाह संस्कार बतलाया है जो लोग विजातीय विवाह करते हैं उन के पिंडशुद्धि का लोप हो जाता है इसलिये जिनागम में—"अथ कन्यां सजातीयां" "आत्मजातीया" अन्य गोत्र भवोद्भवा" ऐसी आज्ञा प्रदान की है।

उत्तर पुराण पत्र १८६ श्लोक ६४ में वर के लक्षण बतलाते समय बतलाया है कि "

स्वाभिजात्यमरोगत्वं वयः शीलं श्रुतंवपुः।
लक्ष्मीः पक्षः परीवारो वरे नवगुणाःस्मृताः॥

भावार्थ--वर में सब से प्रथम गुण अपनी जाति का वर होना चाहिये। यदि आत्म जाति वर की नहीं है तो अवशेष गुणों को ढूंढने की आवश्यकता नहीं है।

कंसको कन्या (जीवंकशा) देते समय महाराज ने कंसकी जाति का पूर्ण निर्णय किया था जब वह कंस अपनी जाति का सिद्ध हो गया तब ही उसका पाणिग्रहण कराया था।

इसलिये जैन धर्म धारण करने से शूद्र न तो संस्कार का

पात्र ही बनता है न मोक्षमार्ग का अधिकारी होता है और न शूद्र के साथ रोटी बेटी आदि धार्मिक कृत्य किये जाते हैं।

शूद्र कौन २ हैं।

जाति गोत्रादिकर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतवः।
येषु ते स्युस्त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्राः प्रकीर्तिताः॥

भावार्थ—जिन की जाति, जिनका गोत्र कर्म का उदय, जिन को वंश परंपरागत पिंडशुद्धि, एवं कुलाम्नाय शुक्लध्यान के कारण भूत हैं ऐसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण वाले जीव संस्कार के पात्र हैं। जिनलिंग के धारण करने योग्य हैं और मोक्षमार्ग के अधिकारी हैं बाकी जिनको पूर्व भव के पाप कर्म के फल से नीच गोत्र का उदय, नीच जाति की प्राप्ति, नीच कुल, मलिन पिंड और मलिन कुलाम्नाय प्राप्त हुए हैं वे सब शूद्र हैं।

शूद्र दीक्षा योग्य क्यों नहीं है।

विशुद्धकुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मतः।
दीक्षायोग्यत्वमाम्नातं सुमुखस्य सुमेधसः॥

भावार्थ—जिस की कुल और जाति (गोत्र) शुद्ध है, जिस का कुलाम्नाय (कुल धर्म) पवित्र है और सदाचार सहित है ऐसा भव्य जिन दीक्षा का पात्र होता है शूद्र के न तो कुल ही

विशुद्ध है न शूद्र की जाति विशुद्ध है और न कुल धन विशुद्ध है इसलिये शूद्र दीक्षा का पात्र नहीं है।

॥ दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाः ॥

दीक्षा के योग्य तीन ही वर्ण हैं। विशुद्ध ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्य ही जिनदीक्षा धारण करते हैं शूद्र कितना ही विद्वान् क्यों न हो, कितनी ही सफाई क्यों न रखता हो कितनी ही शरीर बलकी योग्यता क्यों न रखता हो परन्तु शूद्र को जिन दीक्षा का धारण सर्वथा नहीं हो सकता।

इसी प्रकार पतित दशा जातिच्युत राजदण्डित लोकदण्डित व्याधिवान अधम लक्षणवाला और अङ्गहीन पुरुष जिनदीक्षाका अधिकारी नहीं है।

जिनको संस्कार का अभाव है अथवा आगे संस्कारों के अभाव का प्रसंग होगा ऐसे मनुष्य जिनदीक्षा के अधिकारी नहीं होते।

स्मृतिसार संग्रह पत्र २४ (कर्णाटक)

संस्कृते देह एवासौ दीक्षा विधिरभिस्मृतः।

भावार्थ—जिन भव्यजीवों के यज्ञोपवीतादि षोडश संस्कार कुलपरंपरा से संततिरूप से अविच्छिन्न चले आये हैं ऐसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ही जिनदीक्षा धारण करने के अधिकारी हैं शूद्र के संस्कारों का अभाव है इसलिये जिनदीक्षा धारण करने का अधिकारी नहीं है।

स्मृतिसार संग्रह—

शौचाचारविधिप्राप्तदेहं संस्कर्तुमर्हति ।

भावार्थ—आचारशुद्धि पिंडशुद्धि स्नानादिशुद्धि भोजनशुद्धि और संस्कारों के द्वारा शरीर का संस्कार होता है।

संस्कार—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के ही क्यों होते हैं ? शूद्र को संस्कार क्यों नहीं ?

स्मृतिसार संग्रह—पत्र २४ (कर्णाटक)

विशिष्टान्वयजो शुद्धो जातिकुलविशुद्धभाक् ।
न्यसतेसौ सुसंस्कारैस्ततो हि परमंतपः ॥

भावार्थ—अतिशय पुण्यके फल से (पूर्वभव संचित पुण्यकर्म के निमित्त से प्राप्त ऊंचगोत्र के प्रभाव से) जिनको विशिष्ट—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य का विशुद्ध कुल प्राप्त है तथा जिनकी जाति (मातापक्ष) और कुल (पितापक्ष) विशुद्ध है पिंडशुद्धि सज्जातिके द्वारा संततिरूपसे विशुद्धताको प्राप्त है ऐसे कुलोत्पन्न पुण्य पुरुष ही संस्कारों को प्राप्त होते हैं। और उनको ही परमतप (जिनदीक्षा) होता है।

स्मृतिसार (कर्णाटक)

जातिकुलविशुद्धो हि देहसंस्कारसंयुतः ।
पूर्वसंस्कारभावेन पूजायोग्यो भवेन्नरः ॥

भावार्थ—जाति और कुल से विशुद्ध (१ पतित दशा जाति

---

१ पतिता जातिभिर्लोके: पतिता ये चारित्रतः ।
पतिताः कुल धर्माच संस्कारे नाधिकारिता ॥

च्युत आदि [illegible] आदि षोडश संस्कारों को धारण करनेवाला भव्यजीव पुण्य संस्कारों के प्रभाव से परमपवित्र जिनराजकी पूजा का अधिकारी होता है।

यदि अस्पर्श शूद्र का मुनि को स्पर्श हो जावे तो मुनि को मस्तक से पांवतक स्नान करना पड़ता है। यदि जिन प्रतिमा को उसका स्पर्श हो जावे तो उस प्रतिमाका पुनः संस्कार, मंत्र और विधिपूर्वक कराना पड़ता है तब शुद्धि होती है। जब शास्त्र में शूद्र के लिये उक्त विधान बतलाया है तब शूद्र को जिन दीक्षा कैसे हो सक्ती है। स्पर्श शूद्र के घर पर मुनि भूल से चला जावे तो मुनिको पूर्ण प्रायश्चित्त मंत्र पूर्वक आगमानुसार शुद्धि करानी पड़ती है। तब शूद्रकी जिनदीक्षा किस प्रकार हो सक्ती है।

संगे कापालिका त्रेयीचांडालशबरादिभिः।
आप्लुत्य दंडवत् स्नायात् जपेन्मंत्रमुपोषितः॥

भावार्थ—चांडालादि के स्पर्श करने पर मुनि को पूर्ण स्नान करना, उपवास करना, और मंत्र जपना चाहिये। स्पर्शशूद्र के घर पर अज्ञान या भूल से भोजन करे तो वमन व रेचन कराकर सब से उग्र प्रायश्चित्त ग्रहण [illegible]

संस्कार [illegible] अधिकार सर्वथा नहीं है। जिनागम में शूद्र को जिनदीक्षा का अपात्र बतलाया है। दान देने का अनधिकारी बतलाया है। जिन पूजन (अभिषेक पूर्वक—जिन प्रतिमा का स्पर्श पूर्वक) करने का अधिकार सर्वथा नहीं है। इसलिये [illegible] मोक्षमार्ग के साक्षात् अधिकारी नहीं है।

शूद्रको मोक्षमार्ग का अधिकार क्यों नहीं है।

शूद्र के संस्कार का अभाव है, संस्कार शूद्र के हो नहीं सक्ते शूद्र के रजस्वलासूतक पातक का विवेक नहीं रहता है। शूद्र की जातियों में प्रायः मद्य मांसकी प्रवृत्ति कुल परंपरा से अविच्छिन्न रूप बहुत काल से चली आरही है शूद्र की वृत्ति अतिशय हिंसाजनक होने से तिद्य होती है, शूद्र में पुनर्विवाह होने से पिंड शुद्धिका अभाव होता है, शूद्र के सदाचार भोजनशुद्धि-आदि क्रियाओं में विवेक नहीं होता है।

शूद्रकी संतान प्रतिसंतान में पिंडशुद्धि रजवीर्यशुद्धि और संस्कारशुद्धि का अभाव है। इसलिये शूद्रमात्र मोक्षमार्गता के साक्षात् अधिकारी नहीं है।

विजातीय विवाह करनेवाले को भी मोक्षमार्ग की साक्षात् प्राप्ती नहीं है

जिन जातियों में विजातीय विवाह होता है उन जातियोंमें मोक्षमार्ग की प्राप्ति का साक्षात् अभाव है। विजातीय विवाह करने वाले व्यक्ति को जिन दीक्षा प्राप्त नहीं है।

नाभिजात लभन्ते विजातिष्विव जायते।

परमागममें उक्त श्लोक में बतलाया है कि विजातीय संबन्धकरने वाले पुरुषोंको अभीष्ट (उत्तम) फलकी प्राप्ति नहीं होती है।

मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिये क्या करना ?

अनादिकालकी मलिन पर्यायों की शुद्धि करनी चाहिये। शुद्धि दो प्रकार की मानी है आभ्यन्तर शुद्धि और बाह्यशुद्धि। संस्कारों के

द्वारा मंत्र पूर्वक शुद्धि करना सो आभ्यन्तर शुद्धि है। अष्ट मूलगण धारण कर जिनागमके अनुसार भोजनशुद्धि शरीर शुद्धि पिंडशुद्धि आचारशुद्धि और चारित्रशुद्धि का पालन करना सो वाह्यशुध्दि है।

जिनके इस प्रकार दोनों प्रकार की शुद्धि होती है वे द्विजन्म कह लाते हैं। उनको द्विज भी कहते हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये द्विज कहाते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों को मुनिदीक्षा जिनपूजन जिनस्पर्श मुनिको आहार दान आदि समस्त मोक्षमार्गकी क्रिया करने का पूर्ण अधिकार है मोक्षमार्ग की पात्रता साक्षात् है।

अदीक्षार्हे कुले जाता विद्याशिल्पोपजीविनः।
एतेषामुपनीत्यादिसंस्कारो नाभिसंमतः॥

भावार्थ—अदीक्षा के योग्यकुल (शूद्र) नीच व्यापार करने वालेको यज्ञोपवीतादि संस्कार नहीं होते हैं इसलिये शूद्र को मोक्षमार्ग की (मुनिदीक्षाकी) साक्षात प्राप्ति नहीं है।

प्रश्न—जिनागममें और श्रीमान् पं० प्रवर आगमज्ञानी आशा धर जीने सच्छूद्र के यहां पर मुनिगणको आहार ग्रहण करना बतलाया है सो सच्छूद्र मुनिगणोंको आहार दान और भगवान की पूजा अभिषेक कर सकता है क्या ! सच्छूद्र के यज्ञोपवीत आदि संस्कार होते हैं क्या ? सच्छूद्र त्रिवर्ग है या शूद्रका ही उपभेद है ? इत्यादि वहुत से प्रश्न खुलासा करना परमावश्यक समझ कर संक्षेप में यहां लिखते हैं।

सकृद्विवाहनियताः व्रतशीलादि सद्गुणाः
गर्भाधानाद्युपेता ये सच्छूद्राः कृषिजीविकाः।

अणुव्रत पुराधृत्वा महाव्रत पदोद्यताः
द्विजातयस्त्रिवर्णास्था शूद्रा येणुव्रतार्चिताः
पात्रदानं च सच्छूद्रैः क्रियते विधि पूर्वकैः
शीलोपवासदानाचाः सच्छूद्राणां क्रियाव्रतैः

श्रीमाघनंदितनूभव कुमुदचन्द्र विरचित संहितायां चतुर्थ परिच्छेदे

भावार्थ—सच्छूद्र का लक्षण और कार्य यहां पर बतलाते हैं——जिनके स्त्रियों का एक वार हीं विवाह संस्कार होता हो। (जिन के वंश में कभी पुनर्विवाह नहीं हुआ है) व्रत शील आदि गुणों से संपन्न हो, जिनके गर्भाधानादि समस्त संस्कार नियम पूर्वक होते हों, जो मूलगुणादिक अणुव्रतों को धारण करने वाले हों और महाव्रत (जिनलिंग) धारण करने में तत्पर हों। जो शील उपवास दान पूजादि समस्त पुण्य कर्म करते हों ऐसे द्विजन्मा (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) तीन वर्गों में कोई भी जो कृषि आदि हिंसक आजिविका करते हों वह कर्म से सच्छूद्र है परन्तु वह जाति कुल और पिंड शुद्धि से उत्तम त्रिवर्ग है। इस प्रकार तीन बर्ण में जिनकी आजीविका अधम है वे सब सच्छूद्र कर्म से माने हैं। उनके यहाँ पर विधि पूर्वक मुनिगण आहार ले सकते हैं।

भगवान इन्द्रनन्दी ने कितने ही अधम आजीविका बतलाई है वे अधम आजीविकायें कितनी तो अधिक हिंसारूप एवं विकृत हैं और कितनी ही आजीविका साधारण रूपसे अधम हैं जिनके अधम आजीविका (रोजगार धंधा) है परन्तु जाति कुल और कुलाचार परमोत्कृष्ट है ऐसे अधम आजीविका करने वालों को कर्म (आजीविका निमित्त) से सच्छूद्र कहा जाता है।

सच्छूद्र शूद्र का उपभेद नहीं है। सच्छूद्र के समस्त संस्कार

विधिपूर्वक होते हैं। वे त्रिवर्ग ऊंचगोत्री हैं जिन लिंग धारण के पात्र हैं पूजा और दान के पूर्ण अधिकारी हैं।

हां शूद्र को दान देने का सर्वथा अधिकार नहीं है—इस विषय का एक प्रमाण उत्तर पुराण का देना है यद्यपि पद्मपुराण में कितने ही प्रमाण इस विषय के उपलब्ध होते हैं परन्तु प्रकरण बढ जाने के भय से एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

उत्तर पुराण पत्र १५१ श्लोक २५९-२६०

प्रीतिंकरः पुरेचर्यां यातं स्वगृहसन्नधौ
गणिकाबुद्धिषेणाख्या प्रणम्य विनयान्विता।
दानयोग्यकुला नाहमस्मीत्यात्मानमुच्छुचा
निंदंती बढ ममात्तीत्मुने! कथय जन्मिनां॥

भावार्थ—श्री प्रीतिंकर मुनिराज चर्या (आहार) के लिये नगर में गये जब उनको अपने घरके समीप आते हुये देखा तब बुद्धिषेणा नामकी गणिका बडी भक्ती से विनय सहित बार बार नमस्कार कर कहने लगी कि हे मुनिराज ? मेरी जाति दानयोग्य नहीं है। इस लिये मुझे बडा दुःख है। मैं अपने पूर्वभव के पापकर्मों की अत्यन्त निन्दा करती हूं कि जिससे मुझे यह नीच कुल प्राप्ति हुई। हे भगवन! अब मेरे पूर्व भव कहो,

बुद्धिसेना शूद्र जाति थी इसलिये उसने अपने को "दान योग्य कुला नाहं" दान योग्य कुल (जाति) से हीन समझा इसलिये उसने अपने पूर्वभव के पापकर्मों की निन्दा की जिससे नीच गोत्र (शूद्र जाति) प्राप्त हुआ और इस लिये उसने अपने पूर्वभव का वृत्त (पूर्वभव की बात) पूछा।

इससे स्पष्ट रीति से खुलासा पूर्वक सिद्ध होता है। कि शूद्र को दान देने का सर्वथा अधिकार नहीं है। इसलिये जो लोग शूद्रकी शुद्धि कर रोटी बेटी प्रचार करना चाहते हैं वे मोक्षमार्गका नाश करना चाहते हैं।

प्रश्न--शूद्र के हाथ का पानी गृहस्थों को पीना चाहिये या नहीं ?

सूर्य प्रकाशे—महाग्रन्थे पत्र ३२-३६

शूद्रलोकस्य ये धाम्नि रचोत ते कथंमताः
खानपानादिकमर्थि श्रावकास्ततसमाःखलु १२४
निद्यं स्यात्सर्वमासेषु न्यादपानादिकंखलु
शूद्रकरेण संस्पृश्यं सदाचार विनाशकम् १३१
शूद्राणां न विवेकोस्ति मरणे जन्मनि रजो
मद्यमांसादिखाद्ये च रोमचर्मे बुधाःखलु १४१
यत्र नास्ति क्रियाशुद्धिः क्रियालेशोपि नास्ति च

भावार्थ—जो लोग अपने घरों में शूद्र लोगों को रखकर उनके हाथ का पानी पीते हैं। या उनके हाथ से स्पर्शित वस्तु का सेवन करते हैं वे श्रावक (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) भी शूद्र के समान ही है १२४ ।

शूद्रों के हाथका स्पृश्य किया हुआ जलपान आदि वस्तुओं का कभी भी (किसी महीने में) सेवन करना निंद्य है। सदाचा का नाश करने वाला है। १३१

क्योंकि—शूद्रों को विवेक नहीं है। जन्म मरण आदि का

सूतक पातक का रंचमात्रभी विचार नहीं है रजस्वला स्त्री से खान पान की वस्तुओं के स्पर्श कराने का भी रंचमात्र विचार नहीं है। मद्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने का विचार नहीं है। चर्म और ऊनके पात्र या वस्त्र में रखे हुए जलपान तथा खाद्य पदार्थों के सेवन का विचार नहीं है। शूद्रों के क्रिया की शुद्धि नहीं है और उनके कुलमें एक भी पवित्र आचरण आगम विधि से पाला नहीं जाता है इस लिये शूद्र के हाथ का पानी श्रावक धर्मात्मा भाइयों को नहीं पीना चाहिये।

परम पूज्यपाद श्री १०८ श्री आचार्य शांतिसागर महाराज व उनका संघ शूद्र के हाथ का पानी पीने वाले श्रावक के यहां आहार नहीं लेता हैं। उसका कारण यही है कि शूद्र के हाथ से स्पर्शित जलादि वस्तुओं का सेवन करने से सम्यग्दर्शन का घात होता है श्रावकों के सदाचार में मलिनता प्राप्त होती है। क्रियाओं की शुद्धि नष्ट हो जाती है। अभक्ष्य वस्तुओं के सेवन करने का प्रचार बढ़ता है विवेक नष्ट हो जाता है। हिताहित का विचार लोप हो जाता है और मिथ्यात्व की वृद्धि होती है।

होटलों का खाना बजार की सड़ी गली वस्तुओं मद्य मांस से मिश्रित वस्तुएं आदि सर्व बातें एक शूद्र के हाथ का पानी पीने का त्याग करने से त्याग हो जाती हैं। जितना लाभ इस में है उतना लाभ अन्य व्रताचरणों में नहीं है।

समस्त व्रतों का मूल-समस्त पवित्र आचरणों की शुद्धि का प्रधान कारण और समस्त क्रियाओं का विवेक एक शूद्र के हाथ का पानी का त्याग करना है।

शूद्रको पानी किस प्रकार छानना ? जीवानी कहां पहुंचाना ?

इसका भी विवेक नहीं। रजस्वला अवस्थामें भी पानी शूद्र भरते हैं। फिर शुद्धि कहां पर रहती है। यह विचार प्रत्येक भाई को करना चाहिये।

संस्कार की आवश्यकता।

जिस प्रकार कच्चा माटी का घडा अग्नि संस्कार के द्वारा कार्य करने में समर्थ है इसी प्रकार संस्कारों के द्वारा विशुद्धता मोक्ष-मार्ग के लिये साधिका है।

जिस प्रकार मट्टी का घड़ा तैयार हो जाने पर कच्चे घड़े में पानी भरना आदि क्रिया किसी प्रकार नहीं हो सक्ती है इस लिये उस घट का अग्नि के द्वारा संस्कार कराया जाता है जब घट अग्नि से पूर्ण संस्कारित हो जायगा तब घट में पानी भर कर यथेष्ट कार्य सिद्ध होता है इसी प्रकार बालक परभव के पुण्योदय से ऊंच गोत्र में उत्पन्न हो गया। नाम कर्म के उदय से शरीर भी प्राप्त होगया परन्तु उसके जब तक संस्कार न कराये जांय तो जिन धर्म धारण करने का यथेष्ट फल प्राप्त नहीं होता है।

जिस प्रकार चावल आदि पदार्थ अग्नि से पूर्ण संस्कारित न किये जांय तो उनके भक्षण करने से लाभ के बदले हानि उठानी पड़ती है। इसी प्रकार यदि बालक के संस्कार जैन धर्मानुसार न कराये जांय तो सम्यक्त्व प्राप्ति के बदले मिथ्याभावों का अंकुर उदय हो जाता है। और सदैव परिणामों में चंचलता प्रकट करता रहता है अधिकता होने पर ग्रहीत मिथ्यात्वका अवलंबन बन जाता है।

लोहा पर जब तक पानी का संस्कार न कराया जाय तब तक लोहा तलवार का काम नहीं देता है इसी प्रकार बालक के

संस्कार न कराये जांय तो वह बालक मोक्षमार्ग की सिद्धि में अपने स्वरूप को प्रकट नहीं करता है।

माता के उदर में ही संस्कारों का असर बालक के परिणामों में होता है। यह प्रत्यक्ष है तो गर्भ में मल मूत्र पीवमांस रुधिर में रहने से उत्पन्न हुई मलिनता को दूर करने के लिये जन्म से उत्तम संस्कार कराये जांय तो बालक के परिणामों में कितनी आत्मशक्ति प्रकट होगी। यह बात उसी भव्य पुरुष को अनुभवित है कि जिसके समस्त संस्कार आगमोक्त हुऐ हैं।

संस्कार आत्मा के परिणामोंसे मैल को निकाल कर सम्यक्त्व और सच्चारित्र को प्रकट करते हैं।

जिस प्रकार क्षेत्रका संस्कार करने से क्षेत्रमें फलदानशक्ति उत्पन्न होती है इसी प्रकार संस्कारों द्वारा आत्मगुणों में विशुद्धता की शक्ति प्रकट होती है जिससे मोक्षमार्ग के लिये संस्कार साधक हो जाते हैं।

जिस प्रकार मोती का पट दूर करने पर मोती का पानी प्रकट होता है। उसी प्रकार मलिन पर्यायों की मलिनता का दोष संस्कारों से नाश होता है।

कोई भी कार्य क्यों न किया जाय प्रत्येक कार्य में संस्कारों की आवश्यकता नियम से होती है। गर्भस्थ बालक के संस्कार मलिन रक्खे जांय तो बालक मलिन विचार वाला ही उत्पन्न होगा।

तीर्थंकर भगवान के उत्पन्न समय गर्भ में आने के प्रथम ही देवगण समस्त संस्कार करते हैं गर्भ शोधना होती है। यद्यपि तीर्थंकर भगवान स्वयंभू हैं—अजन्मा हैं पवित्रात्मा हैं तो भी संस्कार करने पड़ते हैं।

अन्तःशुद्धिं बहिःशुद्धिं विदध्याद्देवतार्चने ।

जिनके दोनों प्रकार की शुद्धि हैं (मंत्रों के द्वारा संस्कार शुद्धि और पानी के द्वारा शरीर शुद्धि) वही जिन पूजन करें ऐसा जिनागम में बतलाया है ।

इसीको जिनागम में यह कहा है ।

संस्कारजन्मना वाथ सज्जातिरनुकीर्त्यते ।
यामासाद्य द्विजन्मत्वं भव्यात्मा समुपाश्नुते ।

जिसके संस्कार होते हैं जो वाह्य और अभ्यंतरशुद्धि को पालन करते हैं उनको सज्जाति प्राप्त होती है जिस सज्जाति को प्राप्त कर भव्यजीव द्विजपद को प्राप्त होते हैं ।

" यथैव लब्धसंस्कारः परं ब्रह्माधिगच्छति "

भावार्थ—जैसे २ इस भव्यजीव को संस्कारों की प्राप्ति होती जाती है । वैसे २ यह जीव परब्रह्म के स्वरूपता को प्राप्त होता है ।

निर्मलत्वं तु तस्येष्टं बहिरंतर्मलच्युतिः ।
स्वभावविमलोनादिसिद्धो नास्तीह कश्चन ॥

आदिपुराण ।

भावार्थ—जीवों को वाह्य शुद्धि और अभ्यंतर शुद्धि करने पर ही निर्मलता प्राप्त होती है विना संस्कारों के निर्मलता प्राप्त होने की योग्यता ही नहीं होती है । जिन कुलों में संस्कार हैं वहां पर ही निर्मलता है मोक्षमार्गता है । क्योंकि जीव अनादि काल से मलिन

पर्यायों को धारण करता रहा है—मोह आदि दुर्भाव को धारण करता रहा है इसलिये इसकी मलिनता विशेष हो रही है वह मलिनता संस्कारों से ही दूर होती है। कोई भी संसारी जीव स्वभाव से विमल व कर्म से मलिन पर्यायों को धारण करने पर भी सिद्ध नहीं है। स्वभाव से विमलता और अनादि निधनसिद्धता अंतर्मल (द्रव्यकर्म भावकर्म) को दूर करने पर और बाह्यमल (नोकर्मादि) दूर करने पर प्राप्त होती है। और उसके लिये संस्कारों के द्वारा मोक्षमार्ग की साक्षात् प्राप्ति की योग्यता संपादन करनी पड़ती है। तब ही जिन लिंग धारण किया जाता है।

सज्जाति प्रकरण।

लब्धसंस्कारा या जातिः सा सज्जातिरिहोच्यते ।

भावार्थ—जिस जाति में समस्त बाह्य आभ्यंतर संस्कार जिनागम के अनुसार होते हैं वही जाति सज्जाति कहलाती है और उस सज्जाति में उत्पन्न हुआ मनुष्य ही मोक्षमार्ग का अधिकारी है।

आदिपुराण १४०१

तत्र सज्जातिरित्याद्या क्रिया श्रेयोनुबंधिनी ।
या सा चासन्नभव्यस्य नृजन्मोपगमे भवेत् ॥
स नृजन्म परिप्राप्तौ दीक्षायोग्ये सदन्वये ।
विशुद्धं लभते जन्म सैषा सज्जातिरिष्यते ॥
विशुद्धकुल जात्यादि संपत्सज्जाति रुच्यते ।
उदितोदितवंशत्वं यतोभ्येति पुमान् कृती ॥

पितुरन्वय शुद्धिर्या तत्कुलं परिभाष्यते।
मातुरन्वयशुद्धिस्तु जातिरित्यभिलप्यते ॥
विशुद्धिरुभयस्यास्य सज्जातिरनुवर्णिता।
यत्प्राप्तौ सुलभा बोधिरयत्नोपनतैर्गुणैः ॥
सज्जन्म प्रतिलंभोयमार्यावर्तविशेषतः।
सत्यां देहादिसामग्र्यां श्रेयः सूतेहि देहिनां ॥
शरीर जन्मना सैषा सज्जातिरुपवर्णिता।
एतन्मूला यतः सर्वाः पुंसामिष्टार्थसिद्धयः ॥
संस्कारजन्मना चान्या सज्जातिरनु कीर्त्यते।
यासा मासाद्य द्विजन्मत्वं भव्यात्मा समुपाश्नुते।
शुद्ध संस्कारसंभूतोमणिः संस्कारयोगतः ॥
यात्युत्कर्षं यथात्मैवं क्रियामंत्रैः सुसंस्कृतः।

भावार्थ — जिन संस्कारों से जिन क्रिया मंत्रों से भव्य मनुष्य जन्म में मोक्ष की प्राप्तिके लिये सनंद्ध और साक्षात कारग भूत बन जाता है वही सज्जाति है। वह सज्जाति दीक्षायोग्य श्रेष्ठकुल (ऊंच गोत्र वाले कुल में) में जन्म धारण करने पर जो क्रिया मंत्र और संस्कारोंके द्वारा विशुद्धता प्राप्त की जाती है वह सज्जाति कहलाती है।

सामान्य रूप से सज्जाति का लक्षग यह है कि पूर्वभव के प्रवलपुण्योदय से ऊंच गोत्र द्वारा विशुद्ध कुल, और विशुद्ध जातिमें जन्म लेना सो सज्जाति है। यहां आदि शब्द से कुलाम्नाय आदि की विशुद्धता भी ग्राह्य है।

कुल और जाति की विशुद्धता रहने पर ही मनुष्य कुलवान कहलाता है।

पिता के वंश परंपरा में धरेजा अथवा विधवा विवाह आदि नहीं करने से जो कुल की विशुद्धता रहती है वह कुल शुद्धि है और माता के वंश में धरेजा आदि जाति मलिन करने वाला कार्य न किया हो वह जाति की विशुद्धता कहलाती है। इस प्रकार माता पिता के रज और वीर्य वंश परंपरागत विशुद्ध को ही सज्जाति कहते हैं। इस प्रकार की सज्जाति में जन्म धारण करने वाला भव्य जीव शीघ्र ही वोधि (रत्न त्रय को) प्राप्त होकर निर्वाण पद को प्राप्त होता है।

इस प्रकार की सज्जाति की प्राप्ति आर्यावर्त क्षेत्र में विशेष रूप से सुलभ हैं। क्योंकि आर्यावर्त क्षेत्र तीर्थंकरादि पुण्य पुरुषों का अवतार रहा है इस लिये यह भूमि अध्यात्म तत्व और पाप पुण्य के स्वरूप को ग्रहण करने वाली स्वभाव से ही है यहां पर विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति की प्राप्ति सुलभता पूर्वक स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति में जन्म लेने पर भी जब तक संस्कार न किया जाय तब तक वह जीव द्विजन्मा नहीं कहलाता है। मोक्षमार्ग की सिद्धी के लिये द्विजन्मा होना परमावश्यक है। असल में जो द्विजन्मा है वही सज्जाति वाला सप्तपरम स्थानी है जो द्विजन्मा नही है उनके विशुद्ध कुल और विशुद्ध जातिमें जन्म लेने पर भी सज्जाति की यथार्थ प्राप्ति (मोक्ष पद-देने वाली प्राप्ति) नहीं होती है क्योंकि—मणि ने यद्यपि रत्नों की खानि में जन्म लिया है इस लिये वह मणि अवश्य है परन्तु उस मणि के संस्कार के बिना गुणों में चाकचिक्य नहीं है। मलिन है। संस्कार होजाने पर वही मणि अपने आत्म गुणों को व्यक्त करती है। इसी प्रकार उत्तम कुल

और उत्तम जाति में जन्म लेनेसे पर्याय विशुद्ध जन्म वाली सज्जातिता अवश्य प्राप्त होजाई है। परन्तु संस्कारों के बिना मणि के समान अपने आत्मीय गुणों में विशेष उज्वलता प्रकट नहीं कर सकते हैं मंत्र और क्रियाओं के द्वारा विशुद्ध कुल और विशुद्ध जाति जन्मा को संस्कार कराये जाते हैं तो वह भव्य जीव अपने आत्मीय गुणों को सरलता पूर्वक व्यक्त करता है इसी को संस्कारों का फल--कर्म भूमि का फल मोक्ष मार्ग की सिद्धि का रूप--द्विजन्मता--और सज्जाति परम स्थान की प्राप्ति कहते हैं। इसके प्राप्त करने से आसन्न भव्यता और आसन्न निर्वाणता प्राप्त होती है।

सुसंस्कारविहीन स्य कर्मणि नाधिकारिता।

भावार्थ— जो जाति सुसंस्कारों से विहीन है वह पुण्यकार्य दान पूजा और मोक्षमार्ग की प्राप्ति करने की अधिकारिणी नहीं है।

यज्ञोपवीत के धारण किये बिना दान पूजा नहीं करना चाहिये।

आगम में सर्वत्र यह बतलाया है कि (जनेऊ) यज्ञोपवीत धारण किये बिना उस गृहस्थ ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य को भी जिन पूजन करना और दान देने का अधिकार नहीं है। श्रीजिनेन्द्र भगवान की पूजन, और मुनिगणों को दान यज्ञोपवीत के धारण किये बिना कदापि नहीं करना चाहिये, जो भव्यजीव जनेऊ धारण किये बिना दान पूजनादिक सत्कर्म करना चाहते हैं या करते हैं उनको पूजा और दान के फल की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती है बल्कि क्रिया विहीन विधि कभी २ विषम फलको भी प्रदान कर देती है क्यों कि यज्ञो-

पवीत की निरुक्ति से बिना उसके भी पूजा और दान करना सिद्ध नहीं हो सक्ता है।

यज्ञे दानदेवपूजाकर्मणि धृतं उपवीतं ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीतं, अथवा यज्ञार्थं दानदेवपूजार्थं धृतं उपवीतं ब्रह्मसूत्रं यज्ञोपवीत मिति। "उपवीतं ब्रह्मसूत्रं" इत्यमरः।

यज्ञोपवीत के विषयमें शंकायें

यज्ञोपवीत के विषय में—अनेक प्रकार के विचित्र प्रश्न सुने जाते हैं। कितने ही विद्वानों का कहना है कि यज्ञोपवीत की विधी अनादि काल से नहीं है भरत महाराज ने ब्राह्मणों को स्थापन करते समय कितनेही ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत दिया था। कई विद्वान यह प्रश्न करते हैं कि यज्ञोपवीत (जनेऊ) मिथ्यामती ब्राह्मणही पहनते हैं जैनी नहीं ? किसी का कहना है कि जनेऊ सूत का तागा है इस के धारण करने से क्या लाभ ? कोई ऐसा भी कहते हैं कि जनेऊ जैन धर्म के किसी भी ग्रन्थ में नहीं बतलाया है जैन धर्म में जनेऊ का क्या काम ? यहतो सब मिथ्यामत की बात है। इत्यादि इत्यादि,,

यद्यपि उक्त प्रश्नों पर विचार किया जाय तो समस्त प्रश्न निःसार हैं। जैनागम का यथार्थ परिज्ञान नहीं होने से ये सब अपने मन की परिकल्पना है। कितनेही मिथ्यादृष्टी जैनो का एक आशय यह भी है कि जनेऊ को मिथ्यामत वाले ब्राह्मण धारण करते हैं जैन नहीं, जैन मत में जनेऊ का विधान ही नहीं है। कहीं तागों में धर्म होता है ? इस प्रकार भोली और मीठी बात बनाकर भोली समाज को जगन्नाथ के भात के रूप में लेजाना चाहते हैं परन्तु एक यह जनेऊ का संस्कार उनके कार्य की सफलता में विघ्नकारक है। इस से

उनके एक मेक करने रूप कार्य में ज्ञाति पाँति तोड़ने एवं छूआछूत लोप करने रुप कार्य में बड़ी भारी बाधा होती है। अस्तु संसार में सब प्रकार के विचार होते हैं। परन्तु यथार्थ और सत्य विचार निर्भयता के साथ जिनागम द्वारा करने से सबका भरम दूर हो जाता है और मिथ्या विचार स्वयमेव नष्ट होकर वस्तु का यथार्थ परिज्ञान अवश्य ही होता है इस लिये संक्षेप में उक्त प्रश्नों का समाधान करते हैं—

यज्ञोपवीत की अनादिता।

यज्ञोपवीत अनादि निधन है। जैन धर्म अनादि है यह सब मानते हैं। जैन धर्म अनादि है तो यज्ञोपवीत भी अनादि है। जैन धर्म की अनादि निधन प्रवृत्ति विदेह क्षेत्र और स्वर्ग लोक में है। विदेह क्षेत्रमें—साश्वत धर्म निरावाध प्रचलित है—वहां पर काल चक्र का परिवर्तन नहीं होने से जैन धर्म का नाश कदापि नहीं होता है। सदैव तीर्थंकर सर्वज्ञ प्रभु अनन्त चतुष्टय सहित समवसरणमें विराजमान रहते हैं। मुनिगण निरंतर अपनी अनेक प्रकार की ऋद्धियों सहित विराजमान रहते हैं और वहां पर एक जैन धर्म सदैव विद्यमान रहता है अन्य मत वहां पर किसी भी समय प्रकट नहीं होते हैं। ये सब बातें जिनागम में स्पष्ट रूप से सर्वत्र बतलाई है। इस विषय में किसी को न शंका है और न किसी को किसी प्रकार की बाधा है।

विदेहक्षेत्र में यज्ञोपवीत और समस्त संस्कार क्षत्रिय वैश्यों के निरंतर होते ही हैं वहां पर सब अपने २ संस्कार निश्चय रूप से करते हैं। तब ही तो विदेह क्षेत्र को कर्म भूमि कहा है।

प्रमाण —

प्राक् अच्युताच्युताधीशोद्वीपेस्मिन्प्राग्विदेहके ।
विषये मंगलावत्यां स्थानीये रत्नसंचये ॥ ३६
राज्ञः क्षेमंकराख्यस्य कृतपुण्योभवत्सुतः
श्रीमान् कनकचित्रायां भासोवा मेघविद्युतः ॥ ३७
आधानप्रीति सुप्रीतिधृतिमोदप्रियोद्भवः ॥
प्रभृत्युक्ता क्रियोपेता श्रीमान् वज्रायुधाह्वयः ॥ ३८
तन्मातरीव तज्जन्मतोषः सर्वेष्वभूद्वहुः ।

पृष्ठ २३४ उत्तर पुराण पर्व ६३

भावार्थ—उस पुण्यवान अच्युतेन्द्र ने आयुपूर्ण होने पर सोलवें स्वर्ग से चय कर पूर्व विदेह मंगलावती देश में रत्न संचय पुर नगर में श्रीमान क्षेमंकर महाराज (तीर्थंकर प्रभु) और महारानी कनक चित्रा के अवतार लिया उस समय क्षेमंकर महाराज ने गर्भाधान-प्रीति-सुप्रीति-धृति-मोद-आदि समस्त संस्कार उस बालक वज्रायुध के किये ।

इस प्रकार विदेह क्षेत्र में यज्ञोपवीतादि संस्कार सबको सब कोई नियम रूप से करते हैं।

दूसरा प्रमाण—

श्रीमान श्रीपाल महाराज चक्रवर्ती ने पुंडरीक नगरी अपनी राजधानी में यज्ञोपवीत धारण किया।

आदि पुराण पत्र १७१९ श्लोक संख्या ४१

ममोपनयने प्राहि व्रतं गुरु भिरर्पितम्
मुक्त्वा गुरुजनानीतां स्वीकरोमि न चापरां ।

श्रीमान श्रीपाल महाराज अपने विचार प्रकट करते हैं। कि मैंने यज्ञोपवीत धारण किया है और गुरू के द्वारा व्रत ग्रहण किये हैं अब में गुरु जनों से प्राप्त विवाहिता स्त्री को छोड़ कर अन्य स्त्री को कदापि स्वीकार नहीं कर सक्ता।

इस श्लोक में जैन धर्म की कितनी महत्व की बातें हैं। विवाह (शादी) गुरुजन पितादि हीं कराते थे सवको स्वतंत्रता पूर्वक ग्रहण करने का धर्म विदेह क्षेत्र में नहीं है। दूसरी बात यह बड़े हीं महत्त्व की है कि श्रीपाल महाराज कहते हैं कि मैंने। यज्ञोपवीत धारण किया है मैं अन्य स्त्री को किस प्रकार स्वीकार करूं। अहा। यज्ञोपवीत के धारण करनेमें कितना पुण्यवंध और कैसा परमोत्कृष्ट माहात्म्य है ? जो लोग यज्ञोपवीत को तागा समझते हैं उनको अवश्य ही विचार करना चाहिये।

तीसरा प्रमाण—

युवराज मेघरथके पिता घनरथ जिनराज तीर्थंकर का पूर्व विदेह क्षेत्र में युवराज मेघरथ को उपदेश—

उत्तर पुराण पत्र २५९ श्लोक सख्या २८८

सिंहासने समासीनं सुरासुरपरिष्कृतं।
समस्तपरिवारेण त्रिःपरीत्याभिवंद्यच ॥
सर्वभव्य हितं वाँच्छन् पप्रच्छोपासकक्रियाः।
प्राप्य कल्पद्रुमस्यैव परार्थं चेष्टितं सतां। २८९
प्रागुक्तैकादशोपासकस्थानानि विभागतः।
उपासकक्रिया विद्धोपासकाध्ययनाह्वयं। २९०

अङ्गसप्तम माख्येयं श्रावकाणां हितैषिणीं ।
इति व्यावर्णयामास तीर्थकृत्प्रार्थितार्थकृत् । २६१
गर्भान्वय क्रिया श्चान्या तत्संख्यानुतत्त्वतः
गर्भाधानादिनिर्वाण पर्यन्ताः प्रथमक्रियाः ॥ २६२ ॥
प्रोक्ताः सत्व स्त्रि चाशत्सम्यग्दर्शन शुद्धिषु ।

भावार्थ—परमपूज्य श्री १००८ श्री घनरथ तीर्थंकर देव ने श्रावकों के हितके लिये सम्यग्दर्शनको विशुद्ध करने वाली गर्भाधानादि समस्त संस्कार क्रियाओं का उपदेश दिया । और यह भी बतलाया कि ये क्रियायें (संस्कार) अनादि निधन हैं क्यों कि उपासकाध्ययन नाम के सातवें अंग में इन समस्त क्रियाओं का वर्णन अनादि निधन जिनागम में बतलाया है । श्रीमान भगवान जिनेन्द्र देव ने यह भी बतलाया कि इन क्रियाओं के धारण किये बिना उपासक (श्रावक) हो नहीं सक्ता है ।

इस प्रकार विदेह क्षेत्र में यज्ञोपवीत संस्कारों की प्रवृत्ति निरंतर है । इसके सिवाय श्री अरनाथ तीर्थंकर और श्री मुनिसुव्रत नाथ तीर्थंकरके समय विदेह क्षेत्र के वर्णनमें संस्कारों का वर्णन है ।

चौथा प्रमाण

भगवान श्रीवृषभदेव ने विदेह क्षेत्र की स्थिति का भारत वर्ष में प्रचार किया विदेह क्षेत्र में जो वर्ण व्यवस्था—गर्भाधान आदि संस्कार—गृहस्थों के षटकर्म—कुलाचार की विधि—और गृहस्थों के समस्त कर्तव्य थे वे सब बतलाये । यथा—

आदि पुराण पत्र ५२७ श्लोक १४३

पूर्वापर विदेहेषु यास्थितिः समवर्णिता ।
साद्य प्रवर्तनीयात्र ततो जीवंत्यमूः प्रजाः ।

भावार्थ---भगवान वृषभदेव ने अपने अवधिज्ञान से विदेह की स्थिति को जानकर गृहस्थों के उपकारार्थ समस्त रीति भांति प्रचलित की। सबको संस्कार कराये। धर्म का स्वरूप बतलाया।

इस बातका एक यही प्रमाण है कि श्री वृषभदेव ने स्वयं भरत महाराज के समस्त संस्कार स्वयं किये।

अन्नप्राशनचौलोप नयनादीननुक्रमात् ।
क्रियाविधीन् विधानज्ञः सृष्टैवास्य निसृष्टवान्

आदिपुराण पत्र ५३४

भावार्थ—समस्त प्रकार की विधि—समस्त प्रकार मंत्र शास्त्र समस्त प्रकार संस्कार—और समस्त प्रकार की क्रियायों को जानने वाले श्री ऋषभदेव भगवान ने भरत महाराज के अन्न प्राशन, चौलकर्म उपनयन (यज्ञोपवीत) आदि समस्त संस्कार स्वयं कराये।

जो लोग यह कहते हैं कि जनेऊ को विधि चक्रवर्ती होने के पश्चात् भरत महाराज ने चलाई। उनको विचार करना कि श्री ऋषभ देव ने अन्न प्राशन (बालक को अन्न पान कराना। चौलकर्म (मुंडन कर्म) और जनेऊ की क्रिया बालक अवस्था में हीं भरत के समस्त संस्कार कराये। अत एव निश्चित है कि भरत के बालावस्थामें जनेऊ

का संस्कार किया गया। तब भरत ने यज्ञोपवीत की विधि चलाई है ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है।

इस श्लोक में यह भी अभिप्राय प्रकट होता है कि यज्ञोपवीत की विधि अनादि कालसे है। तब ही तो श्रीऋषभदेव ने विदेह क्षेत्र के समस्त संस्कारों को अवधिज्ञान से जानकर अपने समस्त भरतादि पुत्रों के संस्कार कराये।

इसलिये यह सर्वथा सिद्ध है कि यज्ञोपवीत की विधि अनादि है। क्योंकि विदेह क्षेत्र में यज्ञोपवीत की प्रवृत्ति अनादि काल से प्रचलित है और अनन्तकाल तक सदा साश्वती चली जायगी यह ऊपर के प्रमाणों से स्वतः सिद्ध है इसमें किसी भाई को अब सन्देह नहीं रहा होगा।

जिस प्रकार विदेह क्षेत्र में—यज्ञोपवीत की विधि अनादि काल से स्वयं सिद्ध है। इसी प्रकार स्वर्गमें यज्ञोपवीत आभूषण रूपमें धारण करने की विधि अनादि काल से प्रचलित है। इन्द्र आदि समस्त देव भगवान की पूजा व अभिषेक विना यज्ञोपवीत के सर्वथा ही नहीं करते हैं। यद्यपि इन्द्रों के संस्कार नहीं है तथापि यज्ञोपवीत समस्त देव और समस्त इन्द्रों को नियमित रूप से धारण करना पडता है वे देव इन्द्र अपने जन्म से लेकर मरण पर्यन्त यज्ञोपवीतको नियमित रूप से धारण करते हैं।

प्रश्न—यज्ञोपवीत को तीर्थंकर आदि पुरुषों ने धारण किया है या नहीं ! जो तीर्थंकरों ने यज्ञोपवीत धारण किया हो तो हमें यज्ञोपवीत का धारण करना मान्य है, अन्यथा नही है।

यद्यपि तीर्थंकरों की प्रवृत्ति लोकोत्तर होती है ? और जो

कार्य तीर्थंकर कर सकते हैं वह कार्य अन्य समस्त संसारी जीव मात्र से होना असम्भव है। उनकी तुलना करना यह एक प्रकार का अज्ञान है। तीर्थंकर मुनि को दान नहीं देते हैं। तीर्थंकर सिद्ध भगवान के सिवाय अन्य किसी को नमस्कार नहीं करते हैं। सो यदि यह कार्य अन्य संसारी जीव करने लगजाय तो धर्मका ही लोप हो जाय। परन्तु संसारी जीवों के कर्त्तव्यों से तीर्थंकरों के कर्तव्य लोकोत्तर हैं इसलिये तीर्थंकर देवों की तुलना नहीं करना चाहिये फिर भी संतोष के लिये यह स्पष्ट आगममें बतलाया है कि समस्त तीर्थंकर यज्ञोपवीत धारण करते थे। और समस्त तीर्थंकर देवों ने यज्ञोपवीत धारण किया था ऐसे प्रमाण आगम में बहुत उपलब्ध होते हैं यहां पर प्रथमतीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने यज्ञोपवीत धारण किया था इतना ही प्रमाण पर्याप्त है।

कंठेहार लतां बिभ्रन् कटिसूत्रं कटातटे।
ब्रह्मसूत्रोपवीताङ्गम् सगांगौघ मिवाद्रिराट्। २३५

आदिपुराण पत्र ५८०

भावार्थ—आदि पुराण में श्रीऋषभदेव का वर्णन करते समय बतलाया है कि भगवान के कंठ (गला) में दिव्य हार शोभा दे रहा था कमर में करधनी थी और वक्ष स्थल पर परम पवित्र यज्ञोपवीत था इसलिये वे ऋषभदेव भगवान मेरू पर गंगा की धारा के समान शोभा दे रहे थे।

यज्ञोपवीत समस्त महान पुण्य पुरुषों ने धारण किया है, न कि ब्राह्मणों ने ही, यज्ञोपवीत की विधि भरत महाराज ने प्रचलित की थी तो ऋषभदेव भगवान ने कैसे धारण किया? यज्ञोपवीत

मिथ्याती लोगों ने चलाया है जैनागममें कहीं विधान नहीं है ! ऐसे प्रश्न करने वालों को विचार करना चाहिये कि विदेह में यज्ञोपवीत अनादिकाल से है। सकलकीर्ति आचार्य ने उत्तर पुराण में बतलाया है कि "तत्र (विदेहें) गर्भाधानादि क्रियाणां च प्रवृत्तिः सनातनी अनाधि निधना इससे स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत जैन धर्म का मुख्य धर्म है वह अनादि काल से है और अनंतानंत काल में भी उसका नाश नहीं होगा मिथ्यादृष्टी लोगों ने कुछ बातें जिनागम से ले ली हैं। परन्तु हम लोग अज्ञानता से जिनागम के स्वरूप को भूलाये हैं और मिथ्या धर्मों को सत्य मानने लगे हैं यह भाव मिथ्यात्व जीवों को ऐसी ही बुद्धि करा देता है।

प्रश्न—श्री ऋषभदेव के समय यज्ञोपवीत की विधि थी परन्तु श्री महावीर स्वामी के समय यज्ञोपवीत की विधि प्रचलित नहीं थी इसलिये आज नहीं है।

यद्यपि यज्ञोपवीत की विधि अनादि निधन है और समस्त संस्कार प्रत्येक तीथकरने परमागम के अनुसार बतलाये हैं तथा धारण किये हैं। असंस्कृत (संस्कार रहित) कुल में तीर्थंकर भगवान जन्म ही धारण नहीं करते हैं। फिर भी महावीर स्वामी के समय संस्कार थे या नहीं ? ऐसे प्रश्न व्यर्थ हैं तो भी आगम में इसका पूर्ण खुलासा है।

जीवंधर कुमार के समस्त संस्कार गंधोत्कट नाम के सेठ ने कराये थे—

तस्यान्यदा वणिग्वर्यः कृतमंगलसत्क्रियः।
अन्नप्राशनपर्यंते व्यधात् जीवंधराभिधाम् ॥

उत्तर पुराण पत्र ६५०

भावार्थ जीबंधर कुमार के अन्नप्राशन आदि संस्कार सेठ गंधोत्कट ने मंगल पूर्वक और समस्त उत्तम क्रियाओं के साथ किये।

इस से यह भी बात सिद्ध होती है कि वैश्य और क्षत्रियों के भी समस्त संस्कार जिनागम के अनुसार होते थे। ब्राह्मणों के ही संस्कार होते हैं ऐसा मानना ठीक नहीं है। इस प्रकार महावीर स्वामी के समय समस्त संस्कार प्रचलित थे।

सच्चा जैन कौन है ?

जिसके गर्भाधानादि संस्कार होते हैं वह तो सच्चा जैन है मोक्षमार्ग का अधिकारी है परन्तु जिस के संस्कार नहीं है वह जैन कुल में उत्पन्न होने पर भी नाम मात्र का जैन है वास्तविक जैन नहीं है। वह मोक्षमार्ग का अधिकारी कदापि नहीं है।

द्विर्जातोहि द्विजन्मेष्टः क्रियातो गर्भतश्च यः।
क्रियामंत्रविहीनस्तु केवलं नामधारकः॥

आदि पुराण पत्र १३४८

भावार्थ—मोक्षमार्ग का अधिकार द्विजन्मा को ही है। अन्य को नहीं है। जिसका जन्म गर्भ और संस्कारों से मंत्र क्रिया पूर्वक है वही द्विजन्मा है संस्कारों की क्रिया मंत्र रहित नाम मात्र का जैन है।

जातिःसैव कुलंतच्च सोसियोसि प्रगेतनः।
तथापि देवतात्मानमात्मानं मन्यते भवान॥ ११०

तत्रार्हतीं त्रिधाभिन्नां शक्ति त्रैगुण्यसंश्रिताम् ।
स्वसात्कृत्य समुद्भूता वयं संस्कारजन्मना ॥ १११

आदि पुराण । १४०४

भावार्थ—मेरी वही पवित्र जाति, वही पवित्र कुल था । और मैं पहले जैसा विशुद्ध पिंडवाला था वही हूं परन्तु अब तक मेरे जैनागम की आज्ञानुसार संस्कार नहीं हुए थे इसलिये मैं पूर्वोक्त रूप बना रहा । अब मैंने अरहंत भगवान की आज्ञानुसार संस्कार स्वीकार किये हैं इसलिये अब आप मुझे देवता समझने लगे हैं । सचमुच मैं इस समय जैन संस्कारों को धारण कर देवता हो गया हूं ।

यही बात नीचे लिखे श्लोक बतलाते हैं ।

स्वायंभुवान्मुखाज्जातास्ततो देवद्विजा वयं ।
वृतचिन्हं च सूत्रं च पवित्रं सूत्रदर्शितम् ॥ ११७
शरीरजन्म संस्कारजन्म चेति द्विधा मतं ।

आदि पुराण ।

भावार्थ—स्वयंभू (श्री ऋषभदेव भगवान) भगवान के मुख से हमने यह व्रत के स्वरूप को प्रकट करने वाला (व्रत का चिन्ह) पवित्र यज्ञोपवीत धारण किया है इस लिये हम द्विजों में देव के समान पूज्य हो गए हैं । सच तो बात यह है कि जिस को पवित्र कुल और जाति में जन्म हुआ हो वही सच्चा जैन है । केवल पवित्र कुल और जाति में जन्म लेने से जैन नहीं कहलाता है । संस्कार और जन्म से द्विज कहलाता है । इस श्लोक में एक बात श्लेष से बतलाई है कि ये समस्त संस्कार स्वयंभू (श्रीऋषभदेव) भगवान ने बतलाये हैं ।

वाल्य एव ततोभ्यस्येत् द्विजन्मौपासिकींश्रुतिं।
स तथा प्राप्तसंस्कारः स्वपरोत्तारको भवेत् ॥ १८०

आदि पुराण १४५३

भावार्थ— वाल्य काल से द्विजन्मा (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) औपासिक सूत्र से जिनागम में प्रसिद्ध ऐसे पवित्र संस्कारों को धारण कर स्व और पर तारक हो जाता है। मोक्ष मार्ग का पूर्ण अधिकारी तीर्थ रूप हो जाता है। संस्कारों का कितना माहात्म्य है कि जिस को धारण करने से तीर्थ रूप स्वपर तारक यह जीव हो जाता है।

तदैष परमज्ञान-गर्भात् सँस्कारजन्मना।
जातो भवेत् द्विजन्मेति (आदिपुराण पर्व ६३)

भावार्थ—मैं श्री जिनेन्द्र देव के ज्ञान गर्भ से संस्कार पाकर सच्चा द्विज वना हूं।

इस प्रकार भव्यजीवों को ऊंच गोत्र के प्रभाव से उत्तम कुल और उत्तम जाति प्राप्त होने पर भी जब तक संस्कार नहीं किये हैं तब तक द्विजन्मा नहीं होता है। क्योंकि ,, द्वाभ्यां जन्म संस्काराभ्यां-जात इति द्विजः,, जो ऊंच कुल और जातिमें जन्म लेकर संस्कारों से पुनर्जन्म धारण करता है वही द्विज है द्विजन्मा है और द्विजन्मा को ही मोक्ष मार्ग का अधिकार है।

प्रश्न——यज्ञोपवीतादि संस्कारों का विधान त्रिवर्णाचार में है परंतु आचार्यों के ग्रंथों में नहीं है? सो किसप्रकार प्रमाण माना जाय

समाधान——यद्यपि संस्कारों का विधान परमपूज्य भगवान

जिन सेनाचार्य, भगवान गुणभद्राचार्य, भगवान योगींन्द्राचार्य (परमात्मप्रकाशकर्ता) इन्द्रनन्द्याचार्य, बामदेवसूरि पूज्यपादाचार्य, ब्रह्मसूरि इत्यादि अनेक ऋषी और आचार्य ग्रन्थों में ही विधान स्पष्ट रूप से उपलब्ध है। इस लिये यह वेतुका प्रश्न कुतूहलमात्र ही है परन्तु इस प्रश्न के विचार के साथ २ हमे ये भी प्रश्न है कि सूतक पातक की विशुद्धि, रजस्वला स्त्री की विशुद्धि, पानी छानने की विधी, भोजन की विशुद्धि के लिये खाद्य पदार्थों की मर्यादा, पिंड शुद्धि जाति कुल शुद्धि, वैधव्यदीक्षा, और प्रतिष्ठा (पंचकल्याण संबंधी) पाठ आदि विधान के ग्रंथ कौन कौन से आचार्यों के बनाये हैं, संस्कारों के लिये प्रश्न करने वाले भट्टारकों के बनाये हुए ग्रन्थों से प्रतिष्ठा कराते हैं उस समय विचार नही होता है। मतलब की बात में कौन विचार करे। परन्तु जो सन्मार्ग आगम ग्रन्थों में उपलब्ध है वह पक्षपात के चक्कर में मिथ्या करने के लिये मिथ्यात्व बढ़ाया जारहा है।

दूसरी बात यह भी है कि औषधी का वर्णन वैद्यक शास्त्र में ही होगा ज्योतिष का वर्णन ज्योतिष के ग्रन्थों में ही होगा स्वरोदय यंत्र तंत्र आदि का वर्णन उन विषय के ग्रन्थों में ही होगा इस लिये वर्णाचार के ग्रन्थों में संस्कारों का विशेष वर्णन है। वर्णाचारसंबंधी ग्रन्थ १५-२० आचार्यों के पृथक २ मिलते हैं। इसलिये एक वर्णचार नकली समझा जाय परन्तु सबही वर्णाचार के ग्रन्थ मिथ्या हों ऐसा कहना श्री जिनेन्द्र भगवान और जिनागमका बड़ा भारी अपमान है। ऐसे कहने वाले पक्के मिथ्या द्रष्टी और नास्तिकों के गुरू हैं वे स्वयं सन्मार्ग को धारण नहीं करना चाहते हैं। और दूसरों को मिथ्या प्रलोभन देकर सन्मार्ग से गिरा देना चाहते हैं इस में मिथ्यात्व कर्म का ही विशेषोदय कारण है। सचतो यह है कि जिनकी गति अधम होने वाली है उनकी बुद्धि प्रथम से हीं मिथ्यात्व से परिणत हो जाती हैं।

यज्ञोपवीत किनको और कब धारण करना चाहिये।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले सामान्य रूप से दो प्रकार के पात्र होते हैं। प्रथमपात्र– वे हैं कि जो शिष्य रूप बनकर ब्रह्मचर्य अवस्था को धारण कर गुरुकुल में रहकर विद्याभ्यास के अभिलाषी हों। इनके लिये यज्ञोपवीत धारण करने की विधि अन्य है दूसरे पात्र जो गुरुकुल में रहने के इच्छुक नहीं है। और किसी विशेष कारण से अपना गृह छोड़ना नहीं चाहते हैं अथवा किसी अनिवार्य कारण से यज्ञोपवीत समय पर धारण नहीं कर सके हैं। अथवा भरत महाराज आदि के समान गृह में रह कर श्री ऋषभदेव भगवान से यज्ञोपवीत धारण किया। और दान पूजा तथा षटकर्मों के पालन करने में दत्तचित्त रहे। इनको यज्ञोपवीत धारण करने की विधि प्रथम पात्र से भिन्न है।

इस प्रकार यज्ञोपवीत के धारण करने वाले सामान्य रूप से दो प्रकार के पात्र हैं। परन्तु जिनागम में यज्ञोपवीत के धारण करने वाले तीसरे प्रकार के पात्रों का भी वर्णन मिलता है।

जिसने अपने पूर्वभव के पुण्योदय से ऊंच गोत्र द्वारा विशुद्ध कुल और विशुद्धजाति में जन्म धारण किया है परन्तु मिथ्यात्व के उदय से गृहीत मिथ्यादृष्टी (मिथ्याधर्म को पालन करने वाले विशुद्ध कुलोत्पन्न ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) होरहे हैं ऐसे भव्यजीवो को धर्म देशनादि कारणों से सत्य धर्म की प्रतीति (दृढ श्रद्धा) हो गई हो तो वह मिथ्या धर्म को परित्याग कर जिनागम के अनुसार अपने समस्त संस्कार कर संस्कृत होता है ऐसे पात्रों के लिये संस्कारों की विधि अन्य दोनों प्रकार के पात्रों से पृथक् है। जैसे विशुद्धकुल जन्मा

(ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य में से) भव्य मिथ्या धर्म का परित्याग कर जैनागम के अनुसार अपने समस्त संस्कार करता है और अपनी पूर्व विवाहिता स्त्री के भी समस्त संस्कार करता है। तथा उस पूर्व विवाहिता अपनी स्त्री के साथ पुनर्विवाह जैन संस्कार और क्रियामंत्रों के द्वारा करता है। तब वह अपनी जाति के जैनों में सम्मिलित होता है अन्य जातियों में नहीं। इस वर्ण लाभ क्रिया का वर्णन आगम में स्पष्ट बतलाया है।

इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करने वाले तीन प्रकार के पात्र हैं और तीनों के लिये पृथक् २ विधि आगम में बतलाई है उसका संक्षेप से खुलासा यहां पर करते हैं।

प्रथम पात्र के लिये यज्ञोपवीत संस्कार की विधि।

आदि पुराण पत्र १३५७ श्लोक। १०४ से

क्रियोपनीतिर्नामास्य वर्षेगर्भाष्टमे मता।
यत्रापनीतकेशस्य मौंजीसद्व्रतबंधना ॥ १०४ ॥
कृतार्हत्पूजनस्यास्य मौंजीवन्धो जिनालये।
गुरुसाक्षि विधातव्यो व्रतार्पणपुरस्सरं ॥ १०५ ॥
शिखी सितांशुकः सांतर्वासा निर्वेषविक्रियः।
व्रतचिन्हं दधत्सूत्रं तदोक्तोब्रह्मचार्यसौ ॥ १०६ ॥
व्रतचर्यामहं वक्ष्ये क्रियामस्योपविभ्रतः।
कट्यूरुरः शिरोलिंगं मनूचान व्रतोचितं ॥ १०८ ॥

कटिलिंगं भवेदस्य मौंजीबंधोत्रिभिर्गुणैः ।
रत्नत्रितय शुध्यंगं तद्धि चिन्हं द्विजन्मनां ॥ ११० ॥
तस्येष्टमुरूलिंगं च सुधौतसित शाटकं ।
आर्हतानां कुलंपूतं विशालं चेति सूचने ॥ १११ ॥
उरोलिंगमथास्य स्याद् ग्रथितं सप्तभिर्गुणैः ।
यज्ञोपवीतकं सप्तपरमस्थान सूचकं ॥ ११२ ॥
शिरोलिंगं च तस्येष्टं परं मौंड्यमनाविलं ।
मौंड्यं मनोवचः कायगतमस्योपबृंहयत् ॥ ११३ ॥
एवंप्रायेण लिंगेन विशुद्धं धारयेत् व्रतं ।
स्थूलहिंसा विरत्यादि ब्रह्मचर्योपबृंहितं ॥ ११४ ॥

भावार्थ—प्रथम पात्र अपने गर्भ से आठवें वर्ष यज्ञोपवीत संस्कार करता है। उस समय वह अपने शिर के केशों का मुन्डन करता है और मौंजीवन्धन (मूंज की करधनी) धारण करता है। परमपूज्य श्री अरहंत भगवानकी पूजा कर मन्दिरमें मौंजीवन्धन की विधि गुरु के द्वारा व्रत ग्रहण पूर्वक करता है। अब से यह ब्रह्मचर्य अवस्था में रहकर विद्याभ्यास करने के लिये गुरुकुल में वास करता है इसलिये इसके विद्या समाप्ति पर्यन्त भेप भूषा और दूसरों को देखते ही यह प्रतीत हो जावे कि यह विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी है। इस लिये नीचे लिखे चिन्हों को विद्या समाप्ति पर्यन्त नियम पूर्वक धारण करता है। किसी भी विशेष कारण उपस्थित होने पर यह वेष भूषा और ब्रह्मचारी के चिन्हों को परित्याग नही करता है ।

यह ब्रह्मचारी चोटी रखता है और बाकी सिरके केशों का मुंडन कराता है धोती डुपट्टा सफेद रखता है और विकृत भेष का परित्याग करता है (सिले हुए वस्त्र गृहस्थों के समान विकार को करने वाले नहीं पहनता है) इस प्रकार के व्रतों के निरंतर स्मरण के लिये पवित्र यज्ञोपवीत धारण करता है इस प्रकार के यज्ञोपवीत धारण करने से ही वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

इस प्रकार विद्याभ्यास करने वाले ब्रह्मचारियों का वेष सबका एकसा रहता है। और वे निम्न लिखित वेषसे रहते हैं।

कटि चिन्ह—उर:चिह्न—शिरोलिंग ये तीन चिह्नों से अपने व्रतोंको प्रकट करते रहते है।

कटिलिंग में मूंज की कंधोनी रखते हैं और उरलिंग (छाती का चिह्न) रत्नत्रय को प्रकट करने वाला यज्ञोपवीत होता है और धुली हुई सफेद धोती डुपट्टा पहनते हैं। इस यज्ञोपवीत रखने से उनने (ब्रह्मचारियों ने) अरहंत भगवान के पवित्र कुल को (मोक्ष मार्ग) को धारण किया ऐसा प्रगट रूप में वे सूचित करते हैं। यह यज्ञो-पवीत सात लरों का खास ब्रह्मचारियों के लिये बनाया जाता है सो इस के धारण करने से वे सप्त परम स्थानको प्राप्त होंगे यह प्रत्यक्ष में प्रकट होता है।

ऐसे ब्रह्मचारियों को चोटी होती है ये अपने मन वचन काय को सरल रखते हैं यह सूचित होता है।

इस प्रकार शिरोलिंग १ कटिलिंग २ उरलिंग ३ और ब्रह्म-चारियों की वेष भूषा सफेद धोती डुपट्टा का पहरना यही इनके चिह्न हैं।

इनमें से बहुत से तो पांच अणुव्रत धारण कर विद्याभ्यास

करते हैं। और कितने ही विशेष व्रत धारण करते हैं और ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण ब्रह्मचारी होते हैं।

१ विद्याभ्यास करने वाले और गुरुकुल में रहने लाले ब्रह्मचारियों के अनेक भेद हैं परन्तु सबका समावेश पांच विभागों में होता है। अर्थात् पांच प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं।

धर्म संग्रह श्रावकाचार अधिकार २६॥

आश्रमाःसन्ति चत्वारो जैनानांपरमागमे ॥
ब्रह्मचारीगृहीवानप्रस्थो भिक्षुश्च संज्ञया ॥ १५ ॥

ब्रह्मचारियों के भेद।

अदीक्षोपनयौ गूढावलम्बौ नैष्ठिको भिधाः।
सप्तमांगे भिदाः संति पंचैते ब्रह्मचारिणाम्॥ १६ ॥

॥ लक्षण ॥

वेषंविना समभ्यस्तसिद्धान्ता गृहधर्मिणः।
ये ते जिनागमे प्रोक्ता अदीक्षा ब्रह्मचारिणः॥ १७ ॥
समभ्यस्तागमा नित्यं गणभृत् सूत्रधारिणः।
गृहधर्मरतास्ते चोपनयब्रह्मचारिणः॥ १८ ॥
कुमारश्रमणाः सन्तः स्वीकृतागमविस्तराः।
बान्धवैर्धरणीनाथै दुःसहैर्वा परीषहैः॥ १९ ॥
आत्मनैवाथवा त्यक्तपरमेश्वररूपकाः।
गृहवासरताये स्युस्ते गूढब्रह्मचारिणः॥ २० ॥ युग्मम्

पूर्वं क्षुल्लकरूपेण समभ्यस्यागमं पुनः
हीतगृहवासास्तेवलंम्बब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥
शिखायज्ञोपवीताङ्का स्त्यक्तारंभपरिग्रहाः
भिक्षांचरन्ति देवार्चां कुर्वते कक्षपट्टकम् ॥ २२ ।
धवलारक्तयोरेकतरैकवस्त्रखण्डकम् ।
धरन्ति ये च ते प्रोक्ता नैष्ठिकब्रह्मचारिणः ॥ २३॥ युग्मम्
नैष्ठिकेन विनाचान्ये चत्वारो ब्रह्मचारिणः ।
शास्त्राभ्यासं विधायान्ते कुर्वते दारसंग्रहम् ॥ २४ ॥
प्रथमाश्रमिणः प्रोक्ता वक्ष्यन्ते त्वधुना मया ।
द्वितीयाश्रमसंसक्ता गृहिणो धर्मवासिताः ॥ २५ ॥

चारित्रसार पत्र २० में ब्रह्मचारियोंके भेद इसप्रकार बतलाए हैं ।

तत्र ब्रह्मचारिणः पंचविधाः—उपनयावलंबादीक्षागूढनैष्ठिक भेदेन । तत्र उपनयब्रह्मचारिणो गणाधरसूत्रधारिणः (यज्ञोपवीतादिलिंग धारिणः) समभ्यस्तागमाः गृहधर्मानुष्ठायिनो भवंति १ । अवलम्ब ब्रह्म चारिणः क्षुल्लक रूपेण आगममभ्यस्य परिगृहीतवासा भवन्ति २ ॥ अदीक्षाब्रह्मचारिणः वेषमन्तरेणाभ्यस्तागमा गृहधर्मनिरता भवन्ति ३ गूढब्रह्मचारिणः कुमारश्रमणाः संतः स्वीकृतगमाभ्यासा बंधुभिर्दुस्सह परिषहै रात्मना नृपतिभिर्वा निरस्त परमेश्वर रूपा गृहवासरता भवंति ४ नैष्ठिक ब्रह्मचारिणः समधिगत शिखालक्षित शिरोलिंगाः गणाधर सूत्रो पलक्षितोरोलिंगाः शुक्ल रक्त वसन खंड कौपीन लाक्षेन कटिलिंगा स्नातका भिक्षावृत्तयो देवतार्चनपरा भवन्ति ५ ॥

भावार्थ—उपनय ब्रह्मचारी १ अवलम्ब ब्रह्मचारी २ अदीक्षा

ब्रह्मचारी ३ गूढब्रह्मचारी ४ और नैष्ठिक ब्रह्मचारी ५ इस प्रकार पांच भेद हैं।

जो यज्ञोपवीतादि धारण कर विद्याभ्यासकर गृहस्थधर्म स्वीकार करता है वह उपनय ब्रह्मचारी है। १। जो क्षुल्लक रूपमें यज्ञोपवीतादि लिंग सहित विद्याभ्यास कर गृहस्थ धर्म स्वीकार करता है वह अवलम्ब ब्रह्मचारी है। २। अदीक्षा ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत सहित अन्य वेष के बिना विद्याभ्यास कर गृहस्थ धर्म स्वीकार करता है। ३। गूढ ब्रह्मचारी मुनिका स्वरूप धारण कर बंधु के आग्रह से या परीषह सहन नहीं होने से अथवा राजा के आग्रह से मुनिधर्म को छोडकर गृहस्थ धर्म स्वीकार करता है ४॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी यज्ञोपवीत सहित शिरोलिंग सहित रक्त या सफेद खंड वस्त्र पहनता है कौपीन रखता है उसको स्नातक भी कहते हैं भिक्षा वृत्ति करता है देवता का पूजन करता है। इस ब्रह्मचारी के ११ भेद माने हैं। और उनकी पहिचान के लिये क्रमसे १-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-और ११ यज्ञोपवीत दिये जाते हैं सबको नहीं।

इस प्रकार पांच प्रकार के ब्रह्मचारियों में नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्त्री को स्वीकार नहीं करता है। बाकी श्रमण मुनि ब्रह्मचारी क्षुल्लक ब्रह्मचारी उपनय ब्रह्मचारी अदीक्षा ब्रह्मचारी ये चार प्रकार के ब्रह्मचारी व इनके आवांतर भेदवाले ब्रह्मचारी गण अपने २ वृत्तों को छोड कर स्त्री आदि गृहस्थ धर्म स्वीकार करते हैं।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी दो प्रकार के हैं। एक गुरुकुल में रहने वाले विद्याभ्यासी दूसरे गृह में रहकर प्रतिमा के व्रतोंको पालन करने वाले इनमें से प्रथम नैष्ठिक ब्रह्मचारी की पहिचान के लिये ११ जनेऊ होते हैं। और दूसरे नैष्ठिक ब्रह्मचारी के दो ही यज्ञोपवीत (जनेऊ)

होते हैं। प्रथम नैष्ठिक ब्रह्मचारी ११ प्रतिमा धारक होने पर देवार्चन आदि समस्त संस्कार कर्म कराता है। वस्तु प्रतिवस्तु ग्रहण करता है भिक्षा वृत्ति करता है। इसी को इसीलिये स्नातक कहते है। ये सफेद या गेरुआ वस्त्र पहनते हैं इनका वस्त्र कौपीन और खंड वस्त्र होता है। तदुक्तं—

"नैष्ठिक ब्रह्मचारिणः समधिगतशिखालक्षितक्षिरोलिंगा गणधर सूत्रोपलक्षितोरोलिंगा शुक्ल रक्त वसन खंड कौपीन लक्षित कटि-लिंगाः स्नातका भिक्षावृतयो देवतार्चनापरा भवन्ति (चारित्र सार पत्र २०)"

तदुक्तं आदि पुराणे पत्र १७५८

सप्तमोपासकाद्यास्ते सर्वेपि ब्रम्हचारिणः
गार्हपत्याभिधं पूर्वं परमाहवनीयकं।
दक्षिणाग्निं ततोन्यस्य संध्यासुतिसृषु स्वयं।
तच्छिखित्रय सानिध्ये चक्रमातपवारणं
जिनेन्द्रप्रतिमाश्चावस्थाप्य मंत्रपुरस्सरं॥
तास्त्रिकालं समभ्यर्च्य ग्रहस्थै विहतादरः।
भवतातिथयोयूयमित्याचख्युरुपासकान्॥

भावार्थ—सप्तम उपासक को आदि से लेकर ११ प्रतिमा धारक समस्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी गण गार्हपत्य— आहवनीय—और दक्षिणाग्नि इन तीनों प्रकार की अग्नि को स्थापन कर समीप में चक्र छत्र आदि स्थापन कर श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को मंत्र पूर्वक त्रिकाल पूजा करें। ऐसे नैष्टिक ब्रह्मचारी गणों का आदर सत्कार

गृहस्थों को करना चाहिये । ये ब्रह्मचारी गण अतिथि हैं सो दान मान से सत्कार करना चाहिये ऐसा उपदेश श्रावकों को इन्द्र ने दिया ३५१ ३५२ ३५३ ३५४

प्रश्न—आदि पुराणमें ११ जनेऊ का विधान है सो किनको ?

समाधान—ग्यारह जनेऊ पहरने का नियम नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहने वाले का है । और उनकी भिन्न २ पहिचान के लिये ११ जनेऊ दिये हैं परन्तु अन्य समस्त ब्रह्मचारी और गृहस्थ दो ही जनेऊ पहनते हैं । प्रतिमा धारक नैष्ठिक भी दो ही जनेऊ पहनता है भरत महाराज ने ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को ही ग्यारह जनेऊ दिये । न कि गृहस्थों को ।

तदुक्तं—आदि पुराणे पत्र १३४६

तेषां कृतानि चिन्हानि सूत्रैः पद्मान्हयान्निधेः ।
उपात्तैः ब्रह्मसूत्रान्हैरेकाद्येकादशान्तकैः ।
गुणभूमिकृताद्भेदात् क्लृप्तयज्ञोपवर्तिनाँ ॥

कर्णाटक टिप्पणी सरस्वती भवन मुम्बई ।

गुणभूमिकृताद्भेदात् क्लृप्तयज्ञोपवीतिनां "गुणभूमि कृतात्" दर्शनिकादि गुणनिलयविहितात् क्रमतः कृतः दानपानादिसंस्कारैः वस्त्रादि दान सद्वचनादि सत्कारैः उपात्तैः स्वीकृतैः „

भावार्थ—भरत महाराज ने पद्मनिधि से एक प्रतिमा से लेकर ११ प्रतिमा धारक नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को उनकी पहचानने के लियेएक से ग्यारह यज्ञोपवीत दिये । इस श्लोकमें "गुणभूमि कृताद्भेदात्" इस पदकी टीका दर्शनिक आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी प्रतिमा धारक, ऐसा

अर्थ लिखा है इसीलिए वे हरित अंकुर पर नहीं गये। अन्य ब्रह्मचारी या गृहस्थों को दो ही जनेऊ दिये जाते हैं।

एकाद्येका दशाँगानि दत्तान्येभ्यो मया विभो ।
व्रतचिन्हानि सूत्राणि गुणभूमिविभागतः । ८७

भावार्थ—भरत महाराज श्री समवसरण में श्रीऋषभदेव भगवान से कहते हैं कि हे प्रभो मैंने दर्शनकादि प्रतिमा के गुणों के भेदसे आरम्भ कर ११ जनेऊ व्रतके चिन्ह स्वरूप दिये हैं ।

इन सब प्रमाणों से ११ जनेऊ का धारण करना नैष्ठिक गुरु-कुल में विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी गणों को बतलाये हैं। अन्य को नहीं। अन्य सब को दो ही यज्ञोपवीत धारण किये जाते हैं।

" आयुःकामः सदा कुर्यात् द्विः यज्ञोपवीतकं "

भावार्थ—आयु की इच्छा रखने वाला दो यज्ञोपवीत ही धारण करे। यह विषय आगे स्पष्ट किया जायगा।

उपर्युक्त वर्णन से ११ जनेऊ पहर ने कीशंका सर्वथा निरस्त हो जाती है।

प्रश्न—गुरुकुलों में विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी कौन २ से काम नहीं करता है।

दंतकाष्टग्रहोनास्य न तांबूलं नचांजनं।
न हरिद्रादिभिःस्नानं शुद्धस्नानं दिनं प्रति ११५
न खट्वाशयनं तस्यनान्यांगपरिघट्टनम्।
भूमौ केवलमेकाकी शयीतव्रतशुद्धये ॥ ११६

यावद्विद्यासमाप्तिः स्यात्तावदस्येदृशं व्रतं ।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य अवस्था में उपनयादि समस्त प्रकार के (पांच प्रकार) ब्रह्मचारीगण लकड़ी का दांतोन नहीं करें। पान का भक्षण न करे इसी प्रकार उवटन, खट्वाशयन, दूसरों के साथ अंग से अङ्ग लगा कर शयन आदि कार्य न करे केवल जमीन में एकाकी शयन करे और शुद्ध जल से प्रति दिन स्नान करें यही उनका व्रतचर्या है।

जब तक ये (पांचों प्रकार) ब्रह्मचारीगण गुरुकुल में रह कर विद्याभ्यास करें तब तक यह व्रतचर्या इन को नियम से पालन करनी होगी। विद्या समाप्ति के पश्चात् जब ये ब्रह्मचारी (नैष्टिक को छोड कर उपनय—अवलंब—अदीक्षा—और गूढ ब्रह्मचारी) गृहस्थ धर्म—स्त्री को स्वीकार करते हैं तब उपयुक्त दंतकाष्ट ग्रह आदि समस्त व्रतचर्या का गुरु साक्षी से परित्याग करते हैं ब्रह्मचर्य अवस्था की समस्त व्रतचर्या का परित्याग कर गृहस्थ की परिचर्या को गुरु साक्षी से धारण करते हैं।

आदि पुराण । ३५७।

प्रश्न—गृहस्थ धर्म स्वीकार करने पर क्या वे ब्रह्मचारीगण यज्ञोपवीतादि लिंगों का भी परित्याग करते हैं।

समाधान—कितने ही ब्रह्मचारी मुनि रूप का परित्याग कर गृहस्थ होते हैं कितने ही क्षुल्लकरूप का परित्याग कर गृहस्थ होते हैं कितने ही उपनय आदि अवस्था का परित्याग कर गृहस्थ होते हैं। सो वे सब "दन्तकाष्टग्रह हरिद्रालेपन" आदि के साथ अणुव्रत और महाव्रतों का परित्याग करते हैं परन्तु उरोलिंग

(यज्ञोपवीत) आदि का परित्याग नहीं करते हैं। तथा गृहस्थ के योग्य व्रतों को धारण करते हैं।

आदिपुराण १४३८।

सिद्धविद्या ततो मंत्रैरेभिः कर्मसमाचरेत्।
शुक्लवासाः शुचियज्ञोपवीत्यव्यग्रमानसः ॥ ८१
सूत्रंगण धरै ईदृग्धं व्रतचिहूं नियोजयेत्।
मत्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः

भावार्थ—जो विद्या पढनेके पश्चात् शांत मनसे सफेद वस्त्रोंके साथ यज्ञोपवीतको धारण करने वाले हैं उस यज्ञोपवीत को ही वे गृहस्थ अवस्था में अपने व्रत के चिन्ह की नियोजना करें। ऐसे मंत्र से पवित्र द्विज गृहस्थ अवस्था में यज्ञोपवीत के धारक कहलाते हैं।

इन दोनों श्लोकों का अभिप्राय यह है कि गृहस्थ अवस्था में यज्ञोपवीत रखना ही द्विज का व्रत चिन्ह है। विद्या पढने के पश्चात् गृहस्थ अवस्था के व्रतों का यज्ञोपवीत ही चिन्ह माना है। इसलिये इन श्लोकों से यह तो स्पष्टता पूर्वक घोषणा है कि विद्या पढने के पश्चात् यज्ञोपवीत नहीं छूटता है।

यथा—ब्रह्म सूरिकृत वर्णाचारे—

रत्नत्रयात्मकं पूतं यज्ञसूत्रं सुनिर्मलं। ६०
हरिद्राग्रन्थसारक्त मुरोलिंगं प्रकल्पयेत्।
स पंचाक्षतविद्योपफलसंयुतमंजलिं ६१
तस्याचार्यः स्वहस्ताभ्यां गृहीत्वैवमुपादिशेत्।

मद्यमांसमधुद्यूतरात्रिभुक्त्यादि वर्जयेत् ६३
वटादिक्षीरवृक्षाणां फलमन्यत्त्रसजंतुक ॥
पटोल वदहालाक कलिंगानाँ फलानि च । ६४
पुष्पशाकं शिलीन्द्रं च लसुनं हिंगु मूलकं
नालवल्यादिकं दूष्यं पुराणान्नादि भोजनं ६५
वत्सोत्पत्तेः समारभ्य पक्षात्प्राग्दुग्ध दुग्धकं ।
गुरुरित्थं व्रतं दत्वा रहो मंत्रमुपादिशेत् ६६

भावार्थ—गुरु (आचार्य) अपने हाथ से उस ब्रह्मचारी को गृही बनाने की क्रिया करे—सबसे प्रथम हलदी में रंगकर पवित्र रत्न त्रय स्वरूप यज्ञोपवीत पहनावे, फिर उस गृहस्थ (नवीन गृहस्थ) के दोनों हाथों में चावल और फल देकर गृहस्थ धर्म का उपदेश देवे और तू आज से गृहस्थ हुआ ऐसा उपस्थित जनता के समक्ष प्रकट करे तथा उसको अष्टमूलगुण धारण करावे एवं अभक्ष पदार्थों का परित्याग करावे और एकांत में गृही बनने के मंत्रों को क्रिया पूर्वक करे ।

यही बात आदि पुराण में बतलाई है ।

आदि पुराण पत्र १३५८

ततोप्यूर्ध्वं व्रतं तत्स्यात् यन्मूलं गृहमेधिनाँ
सूत्रमौपासिकं चास्य स्यादध्येयंगुरोर्मुखात् ।
मधुमाँस परित्यागः पंचोदुम्बर वर्जनं
हिन्सादि विरति श्चास्य व्रतं स्यात् सार्वकालिकं

व्रतावतरणं चेदं गुरुसा त्त कृतार्चनं
वत्सरात् द्वादशादूर्ध्वमथवा षोडशात्परं ॥

प्रश्न—यह ब्रह्मचारी १२ वर्ष की अवस्था में समस्त प्रकार की विद्या की समाप्ति करता है अथवा १६ वर्ष की अवस्था में समस्त विद्याओंका अभ्यास पूर्णकर लेता है। विद्याभ्यासकी समाप्ति पर गुरु के द्वारा गृहस्थ धर्मको स्वीकार करता है। गुरु आचार्य उस नवीन गृहस्थ को सबसे प्रथम श्रावक का मुख्य चिह्नरूप यज्ञोपवीत मंत्र पूर्वक देते हैं और आठ मूलगुण धारण कराते हैं। किसी किसी को पांच अणुव्रत भी प्रदान करते हैं बस गृहस्थ धर्म की यही चर्या है।

इसलिए ब्रह्मचर्य अवस्था का परित्याग करने पर गृहस्थ अवस्था में यज्ञोपवीत नहीं रहता है ऐसा मानना सर्वथा मिथ्या है

इस विषय में एक जबर्दस्त प्रमाण यह भी है कि जब यह गृहस्थ गृहस्थाचार्य पदको प्राप्त होता है उस समयमें उसके यज्ञोपवीत नियम पूर्वक रहता है।

क्रियाकलापेनोक्तेन शुद्धिमस्यमविभ्रतः।
उपनीतिरनूचानयोग्यलिं ग्रहोभवेत्। ५३
उपनीतिर्हिवेषस्य वृत्तस्य समयस्य च।
देवतागुरुसाक्षि स्यात् विधिवत् प्रतिपालनं।
शुक्लवस्त्रोपवीतादि धारणं वेष उच्यते।
आर्यषट्कर्मजीवित्वं वृत्तमस्य प्रचक्षते।
जैनोपासकदीक्षा स्य तसमयः समयोचितं

दधतो गोत्रजात्यादि नामान्तरमतः परं ।
ततोयमुपनीतः सन् ब्रह्मचर्यां समाश्रयेत्
सूत्रमौपासिकं सम्यगभ्यस्य ग्रन्थतोर्थतः ॥

आदिपुराण १३९८

भावार्थ—गृहस्थाचार्य बनने पर भी गुरु—देव की साक्षी से गृहस्थ धर्म स्वीकार करने के समय ग्रहण किया हुआ। यज्ञोपवीत इसके नियम से होगा क्योंकि गुरु और देव की साक्षी से ग्रहण किया हुआ यज्ञोपवीत और व्रत विधि पूर्वक पालन करना ही सम्यग्दृष्टि का कार्य है।

गृहस्थाचार्य का चिह्न भी यज्ञोपवीत है सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीत ही इसका वेष है। यह अन्य श्रावकों को यज्ञोपवीतादि विधान कराता है। गृहस्थों के समस्त संस्कार कराता है और षट्-कर्म की आजीविका करता है इसको श्रावकाचार का परिपूर्ण ज्ञान होता है।

प्रश्न—यज्ञोपवीत का कब परित्याग होता है ?

समाधान—गृहस्थ धर्म अवस्था में यज्ञोपवीत का परित्याग सवथा नही होता है मरण पर्यन्त यज्ञोपवीत रखना पडता है । जो गृहस्थ गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत को धारण कर परित्याग कर देवे तो वह मिथ्यात्वी शूद्र के समान है ।।

वृहतजिन दीक्षा विधी में वतलाया है वृहददीक्षा विधि पत्र ४३

अथ-निक्षिप्य मस्तक मध्ये चतुर्दिक्षु केशोत्पाटनमंत्रेण लुंचनं कुर्यात् मंत्रओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सिआ उ सा।

नंतरं मध्य पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर क्रमेण मंत्रोच्चार पूर्वकं केशलुंचनं कुर्यात् इति लुंचनान्ते बृहत्सिद्धभक्तिं विधाय निष्ठाप्य च वस्त्राभरण यज्ञोपवीतादिकं परित्यजेत् ॥

भावार्थ—ऐलकादि मुनि अवस्था धारण करने पर ही यज्ञो पवीत का केशलोंच होने के पश्चात् परित्याग करे इसके प्रथम गृहस्थ अवस्था में यज्ञोपवीत का मरण पर्यन्त त्याग नहीं होता है।

इत्यात्मनो गुणोत्कर्षं ख्यापयन् न्यायवर्त्मना
गृहमेधी भवेत् प्राप्य सद्गृहित्वमनुत्तरं १२६

भावार्थ—यज्ञोपवीत से ही अपने गृहस्थ के गुण को प्रकट करता हुआ वह गृहस्थ सद् गृही कहलाता है।

यह आदि पुराण का श्लोक अच्छी तरह स्पष्ट रूप से कहता है कि जिस गृहस्थ के जनेऊ है वही सद् गृहस्थ और जिसके जनेऊ नहीं है वह सद् गृहस्थ भी नहीं है शूद्र है। इन सब प्रमाणों से यज्ञो-पवीत गृहस्थ अवस्था में मरणपर्यंत नियम से रहता है।

यज्ञोपवीत धारण करने वाला द्वितीय पात्र।

जो गुरुकुल में विद्याभ्यास के इच्छुक नहीं हैं अथवा किस विशेष कारण से गृहका परित्याग करने में असमर्थ हैं। जो विशु कुल जाति में जन्मे है तथा जैन कुल में जिनने जन्म लिया है परन्तु किसी विशेष कारणों से यज्ञोपवीतादि संस्कार जिनके नहीं हुए ऐसे समस्त द्वितीय पात्र हैं।

यद्यपि प्रथम—द्वितीय दोनों प्रकार के पात्रों को यज्ञोपवी

गर्भाष्टमे वर्ष में धारण करना चाहिये जैसा कि श्रीऋषभदेव भगवान ने अपने समस्त पुत्रों को तथा भरत महाराज को यज्ञोपवीत संस्कार कराया। भरत महाराज गुरुकुल में नहीं रहे थे तो भी उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था।

अन्नप्राशनचौलोपनयनादीननुक्रमात्।
क्रियाविधीन् विधानज्ञः स्रष्टैवास्य निसृष्टवान्॥

आदि पुराण ५३४ पत्र।

भावार्थ—श्रीऋषभदेव भगवान ने भरत के अन्न प्रासन, चौल कर्म और यज्ञोपवीतादि समस्त संस्कार स्वयं किये।

प्रश्न—भरत महाराज के ये संस्कार कब हुए?

इस प्रश्न का समाधान आदिपुराण में आगे के श्लोक में दिया है।

ततः क्रमभुवोबाल्य कौमारोत भुवोभिदः

भावार्थ—बाल्यकाल आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार भरत का श्री श्री ऋषभदेव भगवान ने कराया।

इसलिये यज्ञोपवीत धारण करने का समय आठवां वर्ष है। थापि द्वितीय पात्र के लिये यह नियम अपवाद रूप है। द्वितीय पात्र दि आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत धारण नहीं करे तो अपने विवाह स्कार पर यज्ञोपवीत करलेना चाहिये। अब भी बहुत से जैनियों विवाह के समय यज्ञोपवीत धारण करते हैं परन्तु दुख है कि वाह के पश्चात वे निकाल कर फैंक देते हैं। यह अज्ञानता ही

यज्ञोपवीतादि संस्कारों का लोप करने का प्रधान कारण है। विशेष आश्चर्य यह है कि विवाह संस्कार भी जैन विधि से नहीं होता है इसलिये सब संस्कार ही लोप हो गये हैं।

कदाचित् विवाह संस्कार पर यज्ञोपवीत धारण नहीं किया तो गुरुका समागम मिलने पर यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। परन्तु यज्ञोपवीत धारण किये बिना सर्वथा किसी को भी नहीं रहना चाहिये। जो जैन यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं वे जैनागमको नहीं मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं और उनके आचरण शूद्र के समान ही हैं चाहे युवा हों, चाहे वृद्ध हों, चाहे कुमार हों सब को गुरु के हाथ से यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और उसको जन्म पर्यन्त रखना चाहिये।

भरत महाराज ने मुनि अवस्था धारण करने पर ही यज्ञोपवीत का परित्याग किया था गृहस्थ अवस्था में नहीं।

जब भरत महाराज दिग्विजय कर और राज्य की व्यवस्था कर समवशरण में गये वहां पर वे ऋषभदेव भगवान के द्वारा दिये हुए यज्ञोपवीत को धारण किये थे।

आजानुलंबिना ब्रह्मसूत्रेण विभ्रमौ विभुः
हेमाद्रिरिव गंगांबु प्रवाहेण तटस्पृशा

भावार्थ—भरत महाराज के जानु पर्यन्त यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था।

इसलिये यज्ञोपवीत मरण पर्यन्त रखना चाहिये।

यज्ञोपवीत को धारण करने वाले तृतीय पात्र ।

तीसरे पात्रके लिये संस्कार कराने का कोई भी समय नियत नहीं है क्योंकि जब उसका पुण्य उदय आवे और पंच लब्धि द्वारा सम्यग्दर्शन धारण करनेके लिये सन्मार्ग की प्राप्ति हो और मिथ्याधर्म कोछोडकर जैन धर्म को स्वीकार करे तब ही उसके सब संस्कार एक साथ किये जाते हैं।

इस प्रकार वर्ग लाभ के द्वारा जैन संस्कार कराने वाले भव्य जीव यज्ञोपवीत धारण करते हैं

व्रतचिन्हं भवेदस्य सूत्रं मंत्र पुरः सरं ।
सर्वज्ञाज्ञा प्रधानस्य द्रव्यभावविकल्पितं ॥
यज्ञोपवीतं यस्य स्यात् द्रव्येनास्त्रिगुणात्मकं ।
सूत्रमौपासिकं तु स्यात् भावरूढै स्त्रिभिर्गुणैः
यदेव लब्धसंस्कारः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

भावार्थ—वर्गलाभ क्रिया होने के पश्चात् भव्यजीव गृहस्थ के यज्ञोपवीत मंत्र और क्रिया पूर्वक दिया हुआ वह उसको सर्वज्ञ देव की आज्ञा की स्वीकारता (रत्नत्रय की प्राप्ति को) द्रव्य रूप से यह तीन लरका यज्ञोपवीत ही व्यक्त करता है। यद्यपि इस श्रावक के भावात्मक रत्नत्रय रूप यज्ञोपवीत है ही परन्तु द्रव्य रूप वाह्य (शरीर पर) यज्ञोपवीत से ही भाव सूत्र का उपागम होता है। इस प्रकार वाह्य आभ्यन्तर यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्रह्मतत्त्व (परमात्मपद) को प्राप्त होते हैं।

यज्ञोपवीत का कैसा दिव्य माहात्म्य है कि जिसके प्रभाव से

परमात्मपद को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा माहात्म्य अन्य किसी में नहीं है।

प्रश्न—यज्ञोपवीत के बिना मुनियों को आहार दान करने का गृहस्थ अधिकारी है या नहीं ?

समाधान—यज्ञोपवीत को धारण किये बिना गृहस्थ को मुनियों को आहारादिदान करने का सर्वथा अधिकार नहीं है।

दानशासन महाग्रन्थ।

भक्तिमान् सरलोज्ञानी सुदृष्टिर्विनयान्वितः
मद्यमांस मधुत्यागी पंचोदुंबरवर्जितः
त्रिवर्णस्तु कुलाचारपालनोद्यतमानसः
उपनीत्यादिसंस्कारविहितो मधुराशयः
आहारादिक्रियाभिज्ञः शुचिः पूतक्रियाग्रणी
देशकालागमद्रव्यविधिज्ञा धौतवस्त्रभाक्
देवशास्त्र गुरूणां ह्युपासको धर्मवत्सलः
औदार्यादिगुणोपेतो विगर्वो लोभवर्जितः
इत्यादि सुगुणोपेतो दाता स्यात् सुप्रसन्नवाक्

भावार्थ—दाता का लक्षण भक्तिमान हो, सरल हृदय वाला हो, सम्यग्दृष्टी हो, विनयवान हो, अष्ट मूलगुणका धारक हो त्रिवर्ण (ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य) हो जैन धर्म के अनुसार कुलाचार पालने में दत्तचित्त हो, मधुराशय हो, यज्ञोपवीत आदि संस्कार वाला हो

आहारादि क्रियाओं को जानने वाला हो, पवित्र हो, पवित्र क्रिया के करने में अग्रसर हो, देशकाल आगम द्रव्य और विधि को जानने वाला हो पवित्र वस्त्रों का धारक हो। देव शास्त्र और गुरु की श्रद्धा पूर्वक उपासक हो। धर्म में वात्सल्य भावरखता हो उदारतादि गुणों का धारण करने वाला हो अभिमान रहित हो लोभ रहित हो और प्रसन्न वचन वाला हो इत्यादि गुणों सहित दाता होता है।

इस से यज्ञोपवीत रहित दान देना आगम के सर्वथा विरूद्ध है और मुनिगण भी यज्ञोपवीत रहित श्रावक के हाथ से आहार आदि ग्रहण नहीं करते हैं। " जो मुनियों को आहार देने में यज्ञोपवीत की क्या आवश्यकता है " ऐसा कहते हैं वे आगम को नही जानने वाले हैं अथवा मोहनीय कर्म के उदय से उनको जिनागम की सत्य बात रुचिकर नहीं होती है सच तो यह है कि मिथ्यात्व का प्रभाव जीवों को विलक्षण होता है।

इज्यादत्यादिकर्माणि यस्य मूलगुणान्वितः
गृही सोत्र प्रशस्योस्ति ससंस्कारः ससूत्रकः।

भावार्थ—इज्या (जिन पूजा) दत्ति (दान) आदि षटकर्म जिसके मुख्य हों। तथा आठ मूल गुण को पालन करने वाला हो। समस्त संस्कारों को करने वाला हो यज्ञोपवीत सहित हो उसको ही गृहस्थ कहते हैं ऐसे गृहस्थ ही दान दे सक्ते हैं। दान शासन

मूलगुण समोपेतः कृतसंस्कारो दृक् शुचिः
इज्यादिषट्कर्मकरो गृही सोत्र ससूत्रकः।

देवपूजा गुरुसेवा दत्तिः स्वाध्यायः संयमं ।
दयैतानि सुकर्माणि गृहिणां सूत्रधारिणां ॥

भावार्थ—जो मूल गुण सहित हो संस्कारों को करने वाला हो सम्यग्दृष्टी हो पवित्र देवसेवादि षट्कर्मों को करने वाला हो ऐसा गृहस्थ यज्ञोपवीत सहित होता है ।

देव सेवा १ गुरु की उपासना २ दान ३ स्वाध्याय४ संयम ५ और दया ये छह कर्म यज्ञोपवीत धारक गृहस्थ के हैं । दानशासन

इस प्रकार दान शासन ग्रंथ में मुनि को आहार दान का दाता यज्ञोपवीत वाला ही हो सक्ता है । जिसके यज्ञोपवीत नहीं है वह वास्तविक शूद्र के समान है उस से एक भी धार्मिक कृत्य यथेष्ट फल दायक नहीं हो सक्ता है ।

यहां यह भी खुलासा से ग्रन्थकार आचार्य बतलाते हैं कि यज्ञोपवीत धारण करने के लिये सामान्य व्रत अष्ट मूल गुण है । अष्ट मूल गुण धारक पाक्षिक श्रावक यज्ञोपवीती मुनिदानजिनपूजा आदि समस्त काय कर सकता है

कितने हीं यह कहते हैं कि यज्ञोपवीत धारण करने के लिये व्रत (पांच अणुव्रत) अवश्य ही चाहिये सो उनको ये दान शासन के श्लोक विचार करने चाहिये ।

मूलगुणसमोपेतः कृतसंस्कारो दृक् शुचिः ।
इज्यादिषट्कर्मकरो गृही सोत्रससूत्रकः ।

स्मृति ग्रन्थों में पाक्षिक श्रावक को दान पूजा करनेके समस्त

अधिकार बतलाये हैं। भगवान जिनसेनाचार्य ने भी गृहस्थ को पांच अणुव्रत धारण करना ही चाहिये यह नियम नहीं वतलाया है हिंसा दि पंच पापों का त्याग यज्ञोपवीत के समय बतलाया है वह केवल गुरुकुल में अभ्यासार्थी ब्रह्मचारी गणों के लिये है हां जिसके परिणाम अधिक उदास हों वे अपने मन से कुछ भी धारण कर लेवें। अभ्यासार्थ पाक्षिक श्रावक भी १२ व्रतों का पालन करता है इसमें विरोध नहीं है।

कितने ही उदासीन यज्ञोपवीत भी धारण करने में डरते हैं उन्हें शास्त्रोंके प्रमाण देखकर निःशंकित अंगका पालन करना चाहिये।

योज्ञोपवीत विना पूजा करने का अधिकार नहीं है।

१३८ पत्र

यज्ञार्थमेवं सृजनादि चक्रेश्वरेण चिन्हंविधिभूषणानां।
यज्ञोपवीतं विततंहिरत्नत्रयस्य मार्गं विदधाम्यतोहं ॥
अन्यैश्चदीक्षां यजनस्यगाढं कुर्वद्भिरिष्टैः कटिसूत्रमुख्यैः।
संभूषणैर्भूषयतां शरीरं जिनेन्द्रपूजा सुखदा घटेत।

भावार्थ—पूजा को प्रकट करने वाले चक्रेश्वर ने श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिये विधि रूप भूषणों का चिन्ह यज्ञोपवीत वतलाया है रत्नत्रय के मार्ग रूप यज्ञोपवीत को मैं धारण करता हूं। जिस प्रकार मैं ने पूजा के लिये यज्ञोपवीत को धारण किया है उसी प्रकार श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा की दीक्षा के लिये कटि सूत्र आदि अन्य (मुद्रिका शेखर) आभूषणों से शरीर को भूषित (न्इद्रपद धारण कर) करने से भगवान की पूजा सुखद होती है।

इसके बिना पूजा नहीं होती है।

धौतवस्त्रं पवित्रं च ब्रह्मसूत्रं च भूषणं।
जिनपादार्चितंगंधं माल्यंधृत्वाजिनोर्च्यते ॥

विद्यानुवादादांग अर्हत्प्रतिष्ठासार संग्रहे।

भावार्थ—धौतशुद्ध वस्त्र और यज्ञोपवीत धारणकर ही श्रीजिनेन्द्र भगवान की पूजा करनी चाहिये। पूजक को तिलक और माला भी पहरना चाहिये।

इस श्लोक में स्पष्ट शब्दों में वतलाया है कि यज्ञोपवीत विना पूजन नहीं होती है।

रत्नत्रयोमुरोलिंगं ब्रह्मसत्रं शिवप्रभं।
यज्ञोपवीत मित्युक्तं पवित्रं धार्यते मया ॥

भावार्थ—रत्नत्रय का चिन्ह (उरोलिंग) यह यज्ञोपवीत मैं भगवान की पूजा के लिये धारण करता हूं।

श्रीजनेन्द्र भगवान की पूजा।

संकल्प तत्मुखप्रतेः पटुभिमवाप्य सूत्रत्रयं कमल सूत्रसमान कांति। रत्नत्रयाभिमतमात्तशिरोत्तरीयंधृत्वा पवित्रकलितं च करं करोमि। १४८४ वर्ष के लिखे गुटके से।

भावार्थ—श्री जिनेद्र देव की पूजा के प्रारंभ में मैं यज्ञोपवीत धारण करता हूं और षोडश आभरणों से इन्द्रपद को प्राप्त होता हूं। इस श्लोक में पूजन यज्ञोपवीत पहन कर ही करना चाहिये ऐसा वतलाया है।

शिखा यज्ञोपवीत्यंकाः त्यक्तवारंभपरिग्रहाः
भिक्षाश्चरन्ति देवार्च्यां कुर्वन्ने कक्षपद्रिकं ॥

धर्म संग्रह श्रावकाचार २११

भावार्थ—शिखा (चोटी) आदि लिंग के धारक और यज्ञोपवीत को धारण करने वाले भगवान की पूजा करते हैं ।

जिर्नाह् चन्दनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत्
यज्ञोपवीत सूत्रंच कटिमेखलया युतं ॥

भद्रबाहुच०

भावार्थ —भगवान की पूजा के समय चंदन से तिलक लगा कर यज्ञोपवीत आदि षोडशाभरण धारण करे ।

पूर्वं पवित्रतर सूत्रविनिर्मितं च
प्रीतःप्रजापतिरकल्पयदंग संगो ।
तद्भूषणं जिनमहे निजकंधराय
यज्ञोपवीतमहमेव तदातनोमि ॥

घीया मंडी मथुरा के प्राचीन गुटका में पूजा कल्प में

भावार्थ—जो प्रथम से ही पवित्र सूत्र से बनाया हो. और श्री श्री जिनदेव के गंधोदक से पवित्र ऐसा महान दिव्य यज्ञोपवीत श्री जिनेन्द्र देव की पूजा में मैं महान पूजा के साथ अपने कन्धे पर धारण करता हूं । ऐसा लिखा है

विद्वानों को यज्ञोपवीत की महिमा का विचार करना चाहिये तथा भगवान की पूजा यज्ञोपवीत विना नहीं होती है ऐसा सुनिश्चय करना चाहिये।

ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यो नाना लक्षणलक्षितः
कुलजात्यादिसँशुद्धः सद्दृष्टिर्देशसंयमी १४५
क्रियाषोडशभिः पूतो ब्रह्मसूत्रादि संस्कृतः
वेत्ता जिनागमस्यानालस्योगेहीबहुश्रुतः १४६
श्रावकाचार पूतात्मा दीक्षा शिक्षागुणान्वित :

भावार्थ—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य में से विशुद्ध कुल और जाति में उत्पन्न हुआ हो, सद्दृष्टि हो देश संयमी हो १६ संस्कारों से पवित्र हो यज्ञोपवीत से संस्कार युक्त हो जिनागम का जानने वाला बहुश्रुत हो आलस्य रहित हो श्रावकाचार से पवित्र हो इत्यादि गुण सहित गृहस्थाचार्य होता है और वह श्रावक गणों को दीक्षा और शिक्षा देकर धर्म की व्यवस्था करता है यहां पर वह यज्ञोपवीत सहित बतलाया है इसलिए गृहस्थावस्था में यज्ञोपवीत निकाल नहीं दिया जाता है।

भरत महाराज ने यज्ञोपवीत धारक को ही भगवान की पूजा करने का उपदेश दिया।

इज्यां वार्तां च दत्तिंच स्वाध्यायं संयमं तपः
श्रुतोपासक सूत्रत्वात् सः तेभ्यः समुपादिशत् २४
कुलधर्मोय मित्येषा मर्हत्पूजादिवर्णनं

तदा भरत राजर्षि रन्वबोचदनुक्रमात्

आदि पुराण १३४६

भावार्थ—यज्ञोपवीत को धारण करने वाले को ही श्रीजिनेन्द्र देव की पूजा मुनियों को दान स्वाध्याय वार्ता संयम तप आदि षट् कर्म करने चाहिये।

गृहस्थों का यह कुल धर्म है। और उनको भगवान की पूजाका वर्णन भरत महाराज ने अनुक्रम से कहा।

इस प्रकार यज्ञोपवीत के बिना एक भी कर्म उत्तम प्रकार से गृहस्थ नहीं कर सक्ता है।

तेरह द्वीप पूजन

पहले जो जनेऊ सारजू कनक मणिमय अतिहारजू

क्रियाकोश–कांधे जनेऊ सार

भावार्थ—पूजा के समय जनेऊ पहरे।

इसी प्रकार पूजासार ढाई द्वीप पूजन आदि समस्त पूजन में यह जनेऊ धारण करना बतलाया है।

जयसेन प्रतिष्ठा पाठ में

"धौतांवरीयं विधुकांत सूत्रैः" इत्यादि श्लोक में यज्ञोपवी धारण करना बतलाया है।

सोयं जिनः सुरगिरिर्ननु पीठमेतत्
एतानि दुग्धजलधेः सलिलानि साक्षात्
इन्द्रस्त्वहं तु वसवप्रतिकर्मयोगात्
पूर्णा ततः कथमियं न महोत्सवश्रीः

दान शासन

भावार्थ—भगवान की पूजा करने वाला अपने को इन्द्र की स्थापना के लिये यज्ञोपवीत आदि धारण करे ।

यज्ञोपवीत कैसा होना चाहिये ?

नव देव इति प्रीत्या तत्प्रीत्यै नवतंतुभिः
एकीकृत्य गुणैः सम्यक् दृग्ज्ञानाचार लक्षणं ।
रत्नत्रय मुरोलिंगं ब्रह्मसूत्रं सितप्रभं
यज्ञोपवीत मित्युक्तं पवित्रंधार्यते मया ।
विद्यानुवादांग अर्हत्प्रतिष्टासंग्रहसार

भावार्थ—अरहंत १ सिद्ध २ आचार्य ३ उपाध्याय ४ साधू ५ जिन धर्म ६ जिनागम ७ जिनचैत्य ८ और जिनचैत्यालय रूप नव देवता की पूजा के लिये नव तंतु का तीन लरका सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप द्रव्य रत्नत्रय को साक्षात् प्रकट करने वाला यह पवित्र यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये ।

पण्णवति मुष्टियुक्तं सूत्रं त्रितयं पुनस्त्रयं कुर्यात्
रत्नत्रयमितिमत्वा तदेव यज्ञोपवीताहम् ।
एकेनोज्वलतंतुना त्रिवलितेनायं त्रिवर्गात्मना
त्रिस्त्रिः केवल लब्धभेदनवभि जीवादिसंकल्पतः
सप्तत्रिंशतिभेदतः परिमितं सूत्रं समेतं पुनः
सद्रत्नत्रय रूपमेति बिभृयाद् यज्ञोपवीतं द्विजः ।

भावार्थ—छ्यानवे मूंठ सूत के तीन तार करना फिर भी तीन तार कर (इस प्रकार नव तार) रत्नत्रय रूप धारण करे यज्ञोपवीत इतना लंबा है।

यज्ञोपवीत एक उज्वल तंतु को त्रिवर्ग करना चाहिये फिर भी त्रिभाग करना चाहिये सत्ताईस भेद सहित भेद के तीन लर का यज्ञो पवीत धारण करना चाहिये।

रक्षाबन्धन (सलोने) के दिवस यज्ञोपवीत होम कर प्रति वर्ष धारण करना चाहिये।

वृष्ट्यंबु रक्षिते सस्ये क्षेत्रे शाद्वलिते सति।
श्रावण्यां पौर्णमास्यांतु स्यादुपाकर्मोपनीतिनां॥

भावार्थ—वृष्टि से क्षेत्र सुन्दर दीख रहे हैं। ऐसे श्रावणसुदी पूर्णमासी (रक्षाबन्धन) के दिवस यज्ञोपवीत को होम विधिपूर्वक प्रति वर्ष धारण करना चाहिये।

होमोपवीत तत्त्वार्थसूत्राणांतु यथाक्रम
उपाकर्म तदेवंस्या त्प्रतिवर्षं द्विजन्मनां (ब्रह्मसूरि)

भावार्थ—होम पूर्वक और यज्ञोपवीत की विधि क्रिया पूर्वक प्रति वर्ष श्रावण सुदी पूर्णमाके दिवस यज्ञोपवीत बदलना चाहिये।

पाक्षिकाचारसंपन्नाः श्रावकाः शुद्धदृष्टयः।
श्रावणशुक्ल पक्षान्ते उपाकर्म समाचरेत्॥
यज्ञोपवीतं विधिना क्रियामंत्रपुरः सरं।

प्रतिवर्षं स्वकंठेहि धारयंति नवं नवं ॥

भावार्थ—पाक्षिक श्रावकगण श्रावण सुदी पूर्णमासी के दिवस प्रतिवर्ष होम मंत्र क्रिया और विधिपूर्वक नवीन यज्ञोपवीत धारण करते हैं।

शिरः प्रदेशे कर्णे वा धृतयज्ञोपवीतकः ।

भावार्थ--साधारण नियम यह है कि किसी भी कार्य में यज्ञोपवीत कान या मस्तक पर धारण करना चाहिये।

उपर्युक्त निरुक्ति से दान और पूजाकर्ममें यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिये।

ताडपत्रे ग्रन्थे पर्व ३८ भगवज्जिनसेनाचार्य विरचित आदि पुराणमें सप्तस्थान सूचक यज्ञोपवीत बतलाया है।

व्रतचर्यामहं वक्ष्ये क्रियामस्योपबिभ्रतः
कट्यूरुरःशिरोलिंगमनूचानव्रतोचितम् ॥ १०९
कटिलिंगं भवेदस्य मौंजीबंधस्त्रिभिर्गुणैः
रत्नत्रयविशुद्ध्यंगं तद्धि चिन्हं द्विजन्मनः म् ॥ ११०
तस्येष्टमुरुलिंगं च सुधौतसितशाटकं
आर्हतानां कुलं पूतं विशालं चेति सूचने ॥ १११
उरोलिंगमथास्य स्यात् ग्रथितं सप्तभिर्गुणैः
यज्ञोपवीतकं सप्त परमस्थान सूचकम् ॥ ११२

भावार्थ—श्रीमद् भगवज्जिनसेनाचार्य ने यज्ञोपवीत को सप्त

परमस्थान का सूचक बतलाया है। पाक्षिक—और नैष्ठिक श्रावकका यज्ञोपवीत चिह्न है यदि यह चिह्न धारण नहीं किया हो तो उसको श्रावक नहीं कहना चाहिये, और न वह श्रावक कहलाता है। यज्ञोपवीत के विना मुनिगण उसको श्रावक नहीं समझकर दान ले नहीं सकते हैं।

जिनने यज्ञोपवीत धारण नही किया है उनको जिन धर्म सुनाना नहीं चाहिये फिर उनको जैन श्रावक किस प्रकार कह सकते हैं ? और वह जिनपूजा और मुनिको आहार दान का अधिकारी किस प्रकार हो सक्ता है। ?

यावज्जीवमिति त्यक्त्वा पंचोदुंबरपूर्वकान्
जिनधर्मश्रुतेर्ग्राह्यः स्यात्कृतोपनयो द्विजः ॥

भावार्थ—जिस भव्यजीवने यावज्जीवन पर्यन्त (यम रूपसे) अष्ट मूलगुण धारण किये हैं और जिसके यज्ञोपवीतादि संस्कार होते हैं। ऐसे पुनीत आत्माको ही जिनधर्म सुनाना चाहिये अन्यको नहीं। क्योंकि मोक्षमार्गता संस्कार से विशुद्ध पुनीत आत्मा को ही होती है जिनधर्म सुनाने का फ़ल ऐसे पवित्र आत्मा ही साक्षात् संपादन कर सकते हैं वे ही जिनपूजन—मुनिदान—और जिनलिंग धारण कर मोक्ष मार्गता प्रकट कर सकते हैं जिनके संस्कार नहीं है उनको जिनधर्म सुनाने का फल (मोक्षप्राप्ति) सिद्ध नहीं होता है इसलिये यज्ञोपवीतको धारण कर ही जिनपूजन और दान करना चाहिये।

ताडपत्र ग्रन्थमें—श्रीब्रह्मसूरि आचार्य ने बतलाया है कि भगवान की पूजा यज्ञोपवीत धारण कर ही करे—

चंदन लेपनस्योर्ध्वमध्यभालं धरेद् द्विजः ॥
अंगुलाग्रमितेदेशे जिनपादचिंतानतान् ॥ १३३
यज्ञसूत्रं सोत्तरीयं शेखरं कुंडलं तथा
कंकणं सपवित्रां च मुद्रां भूषणमिष्यते ॥ १३४ ॥
त्रिपंचदर्भवलितं ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितम्
सुवर्णाग्रं योग्यवलयं पवित्रमिति भाषितं ॥ १३५ ॥
इति गन्धादिभिः स्वं च भूषयेदविकारकैः
इन्द्रं मत्वा जिनेन्द्रं श्रीपादपूजाधिकारकः १३६

भावार्थ—पूजा करने वाला सबसे प्रथम अपने को इन्द्र की स्थापना करे—इन्द्र स्थापना के लिये अपने मस्तक में तिलक लगावे—अक्षत लगावे-यज्ञोपवीत धारण करे शुद्ध धुले हुये धोती दुपट्टा पहने कुंडल पहने कंकण धारण करे जिन मुद्रासे भूषित हो और रत्नत्रय रूप यज्ञोपवीत धारण कर ही जिनपूजन करने का अधिकार प्राप्त होता है ।

ताडपत्रग्रन्थ ब्रह्मसूरिजिन संहितासारोद्धारे प्रतिष्ठातिलकनाम्निग्रन्थे

मुंजत्रिवर्तितवलितां मौञ्जीं त्रिगुणितां शुभाम्
कौपीनं कटिसूत्रोर्ध्व कटिलिंगं प्रकल्पयेत् १८१
रत्नत्रयात्मकं पूतं यज्ञसूत्रं सुनिर्मलम्
हरिद्रागंधसारात्तमुरोलिंगं प्रकल्पयेत् ॥ १८२
जिनराजपदांभोजशेषासंसर्गपावनीम्

ब्रह्म ग्रन्थिशिखामेव शिरोलिंगं प्रकल्पयेत्

भावार्थ—कमर में मौंजीवन्धन—कोपीन ये कटि लिंग हैं रत्नत्रयात्मक होने से पवित्र अत्यन्त पवित्र यज्ञोपवीत यह वक्षस्थल का लिंग है। सिरकी चोटी बांधना यह मस्तक का लिंग है। भाल में तिलक लगाना यह भाल का चिन्ह है, इन चिन्हों को धारण करने वाला ही जिन पूजन का अधिकारी है।

प्रतिष्ठासारोद्धार—आशाधर विरचित।

दृग्बोधचारित्रगुणत्रयेण धृत्वा त्रिधौपासकभावसूत्रं
द्रव्यं च सूत्रं त्रिगुणं सुमुक्ताफलं तदारोपणमुद्वहामि ॥२२॥
ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः स्वाहा इति ब्रह्मसूत्रं बिभृयात्

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप तीन लरका मुक्ताफल समान स्वच्छ यज्ञोपवीत धारण करता हूं। और भगवान की पूजा का अधिकारी होता हूं।

रत्नत्रयांगमुपवीतमुरस्यथांगं
देशव्रतस्य वसुकंकणमत्र हस्ते।
ब्रह्मव्रतांगमधुना स्वकटौ च मौंजीं
धृत्वारभे जिनमखं मखदीक्षितोहं

भावार्थ—पवित्र रत्नत्रय स्वरूप यज्ञोपवीत रत्नजडितस्वर्ण कंकण—मौंजीबंधन आदि धारण कर इन्द्र की दीक्षा धारण करता हूं

और यज्ञदीक्षा को धारण कर श्री जिनेन्द्र भगवान की पूजा का अधिकारी होता हूं।

ताडपत्रग्रन्थ यज्ञदीक्षाविधानग्रन्थे—

प्रालंबसूत्रजिनसूत्रविराजहार—
सद्दर्शनस्फुरितविस्फुरितात्मतेजः
ग्रैवेयकं चरणचारुभजन् जिनेज्या।
सज्जस्तनोम्यमलचिद्रुचियज्ञसूत्रम् ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप यज्ञोपवीतादि को धारण कर जिन पूजन का पात्र होता हूं।

ताडपत्रग्रन्थे प्रतिष्ठासारे—

तन्वन् हृद्युपवीतमर्जुनरुचि प्रव्यक्तरत्नत्रयं
ख्याताणुव्रतपंचशक्तिवसुमद् बिभ्रत् करे कंकणं
मौंज्या श्रोणियुजा जिनक्रतुमिति ब्रह्मव्रतं द्योतयन्।
यज्ञेस्मिन् खलुदीक्षितोहमधुना मान्योस्मि शक्रैरपि॥१२७॥

टीका—अस्मिन् यज्ञे-जिनयज्ञे (जिनपूजायां) हृदि उरसि प्रव्यक्तरत्नत्रयमर्जुनरुचि--श्वेतवर्णं उपवीतं यज्ञोपवीतं तन्वन् धारयन् करे हस्ते ख्याताणुव्रतपंचशक्तिवसुमत् कंकणं बिभ्रत्। श्रोणियुजा कटियुजा मौंज्या ब्रह्मव्रतं बिभ्रत् इति एवं दीक्षितोहं-यज्ञदीक्षादीक्षितोहं जिनक्रतु-जिनयज्ञं (जिनपूजां) द्योतयन् प्रकाशयन् सन् अधुना संप्रति (जिनयज्ञकाले) शक्रैरपि देवेन्द्रैरपि मान्योस्मि खलु।

भावार्थ--रत्नत्रयरूप यज्ञोपवीत, पंच अणुव्रत की शक्तिरूप रत्नस्वर्णविनिर्मित कंकण, ब्रह्मव्रत स्वरूप मौंजीबन्धनको धारण कर मैं इन्द्र दीक्षासे दीक्षित होगया अब मैं देवोंसे मान्य होगया हूं और जिनपूजन करने का अधिकारी अब निश्चय से हुआ हूं।

श्रीमन्मंदरमस्तके शुचिजलैर्धौते सदर्भाक्षते
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं त्वत्पादपुष्पस्रजं।
इन्द्रो हं निजभूषणार्थममलं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्राकंकणशेखरानपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे १

हे भगवन् मैं शुद्ध जलसे प्रक्षालन किये हुए और दर्भ अक्षत आदि से सुशोभित तथा मेरु पर्वत के समान पवित्र सिंहासन पर भगवान् अरहंत देवको स्थापन करता हूं तथा आपके चरणकमल की पवित्र माला को धारण कर अपने में इन्द्र की कल्पना करता हूं तथा आपका अभिषेक करने के समय इन्द्र के समान अपने शरीर को सुशोभित करने के लिये मुकुट कंकण यज्ञोपवीत तिलक आदि सब आभूषण धारण करता हूं।

स्नातोऽनुलिप्तसर्वाङ्गो धृतधौतांबरः शुचिः
दधे यज्ञोपवीतादिमुद्राकंकणशेखरान्॥

भावार्थ—जिन पूजन के लिये स्नान करता हूं। शुद्ध धोती दुपट्टा धारण करता हूं। और यज्ञोपवीतादि इन्द्र केचिन्ह धारण करताहूं

भाव संग्रह—देवसेन सूरि विरचित।

अंगे णासं किच्चा इन्दोहं कप्पिऊण णियकाए।
कंकण सेहर मुद्दी कुणओ जण्णोपवीयं च ॥ ४३ ॥

भावार्थ—मंत्रों के द्वारा अपने शरीर में इन्द्रकी स्थापना करनी चाहिये। और कंकण शेखर मुद्रिका तथा यज्ञोपवीत धारण कर अपने को साक्षात् इन्द्र मानकर भगवान की पूजा करनी चाहिये

श्रीमहाकलंकसंहिता सूत्रस्थान चतुर्थ परिच्छेद।

धौतवस्त्रं पवित्रं च गंधमाल्यं च धारयन्
ब्रह्मसूत्रं ततो बिभ्रत्सुरेन्द्रत्वं विभावयेत् ॥ १४ ॥
धारयेत् भूषणं ह्यमिंद्रविभ्रमकारि यत्
पवित्रब्रह्मसूत्रादिलक्षणं वक्ष्यतेग्रतः ॥ १५ ॥

भावार्थ—उक्त दोनों श्लोकों में पूजा करने के लिये सबसे प्रथम अपने को इन्द्र की स्थापना मंत्रद्वारा करे और इन्द्र स्थापना के लिये धोती दुपट्टा माला यज्ञोपवीत धारण करे।

इन्द्र का स्वरूप प्रकट करने के लिये यज्ञोपवीत धारण करे।

वस्त्रयुग्मं यज्ञसूत्रं कुंडले मुकुटं तथा
मुद्रिकां कंकणं चेति कुर्याच्चन्दनभूषणम् ६६
एवं जिनाँघ्रिगंधैश्च सर्वांगं स्वस्य भूषयेत्
इन्द्रोहमिति मन्वात्र जिनपूजा विधीयते ६७

भावार्थ—धोती दुपट्टा यज्ञोपवीत कुंडल मुकुट मुद्रिका कंकण आदि चिन्हों को धारण करे। चंदन से चिन्ह बनावे यज्ञोप वीत (जो प्रथम धारण कर रक्खा है) पर चंदन लगाकर मस्तक से लगावे। तथा जिन भगवान के चंदन से अपने शरीर को भूषण कर अपने को इन्द्र ऐसा मान्य करे। इस प्रकार इन्द्र को ही जिनपूजा करने का अधिकार है अन्यकोन हीं।

श्रीनेमिचंद्राचार्य विरचित प्रतिष्ठातिलके।

भावश्रुतोपासकदिव्यसूत्रं द्रव्यंच सूत्रं त्रिगुणं दधानः
मत्वेन्द्रमात्मानमुदारमुद्रां श्रीकंकणं सन्मुकुटं दधेहम्।

भावार्थ—भाव श्रुतको प्रकट करनेवाला तीनलरका यज्ञोपवीत मुकुट कंकण आदि धारण कर मैं इन्द्र होता हूं। और जिन पूजनका अधिकारी वनता हूं।

सूत्रं गणधरैर्दृब्धं व्रतचिन्हं नियोजयेत्
मंत्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः।

भावार्थ—गणधर देव ने मोक्ष मार्ग के प्रकट करने के लिये व्रतचिह्न रूप अत्यन्त पवित्र मंत्र से संस्कारित आत्मा के भावों को विशुद्ध वनाने वाला ऐसा यज्ञोपवीत धारण करने वाला द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वतलाया है।

पूजादानादिसत्कर्म संध्यावंदनकं तथा
सदा कुर्यात् स पुण्यात्मा यज्ञोपवीतधारकः।

भावार्थ—भव्यजीव पूजा दान प्रतिष्ठा होम संध्यावन्दन

अभिषेकादिक पुण्यकम यज्ञोपवीत धारण करने पर ही करें।

॥ व्रतसिध्यर्थमेवाहमुपनीतोस्मि सांप्रतम् ।

भावार्थ—व्रतों की सिद्धि के लिये मैं यज्ञोपवीत का धारण करने वाला इस समय हुआ हूं यज्ञोपवीत के विना व्रत भी नहीं होते हैं।

आदि पुराण

व्रतचिन्हं भवेदस्य सूत्रं मंत्रपुरस्सरं
सर्वज्ञाज्ञाप्रधानस्य द्रव्यभावविकल्पितं
यज्ञोपवीतमस्य स्याद् द्रव्यतस्त्रिगुणात्मकं
सत्रमौपासिकं च स्याद् भावरूढैस्त्रिभिर्गुणैः

भावार्थ—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को मंत्र की शक्ति से विशुद्ध यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। यह यज्ञोपवीत सर्वज्ञ देवकी द्रव्य और भावसे आज्ञा का पालन करने का चिन्ह स्वरूप है। यज्ञोपवीत संस्कार को करने वाला सम्यग् दृष्टि होता है तीन लरका यज्ञोपवीत तीन रत्नत्रयको प्रकट करने वाला और श्रावक के स्वरूप को प्रकट करने वाला होता है।

यज्ञोपवीत संस्कारों से रहित शूद्रोंके घर
पर मुनिगण चर्या नहीं करते हैं।

नीतिसार ताडपत्रग्रन्थ

दीनस्य सूतिकायाश्च छिपकस्य विशेषतः
मद्यविक्रयिणो मद्यपायिसंसर्गिणश्च न ॥ ३८ ॥

गायकस्य तलारस्य नीचकर्मोपजीविनः ।
मालिकस्य विलिंगस्य वेश्यायास्तैलिकस्य च ३९
क्रियते भोजनं गेहे यतिना भोक्तुमिच्छुना ।
एवमादिकमन्यत्र चिंतनीयं स्वचेतसा ४०

भावार्थ—दरीद्री प्रसूता छीपी मद्यविक्रयकरनेवाला कलार मद्यपान करने वाला मद्यका संसर्ग करने वाला गायक तलार माली तेली तंबोली आदि शूद्रों के यतिगण भोजन नहीं करे।

यज्ञोपवीत रहित उच्च कुलीन ब्राह्मण वैश्य और क्षत्रियके घरपर भी भोजन नहीं करे।

नीतिसार ताडपत्र ग्रन्थ

वरं स्वहस्तेन कृतः पाको नान्यत्र दुर्दृशाम् ।
मंदिरे भोजनं यस्मात्सर्वसावद्यसंगमः । ४२

भावार्थ—मुनिगणों को अपने हाथ से रसोई बनाकर खालेना अतिशय श्रेष्ठ है परन्तु मिथ्यादृष्टी अजैन लोगों के घर (जिनके संस्कार मिथ्या हैं आचार जैनागमसे विपरीत हैं) पर भोजन करना ठीक नहीं है चाहे मिथ्यादृष्टी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ही क्यों न हों परन्तु वहां पर सर्व पापारंभ की संभावना है।

भांडभाजनशुद्धोऽपि पाखंडी यो विनिन्दकः ।
यतेस्तत्र न भोक्तव्यं तदन्नं पापमुच्यते ॥

भावार्थ—जो जैन भांड भाजन शुद्ध रखताहो परन्तु पाखंडी

हो गुरू निंदक हो तो यतिको उसके हाथसे भोजन नहीं करना चाहिये। भावार्थ-संस्कार विहीन, आगम देव गुरुकी श्रद्धा रहित मनुष्य के घर पर भोजन नहीं करना चाहिये।

संस्कारों से शुध्दि का फल।

नीतिसार।

मनः शुध्दं भवेद्यस्य सः शुध्द इति भाष्यते।
विना तेन कृतस्नानोप्यंगी नैव विशुध्द्यति॥

अर्थ—जिसकी संस्कारों द्वारा मनकी शुद्धि होगई है वही शुद्ध है संस्कारों के बिना कितना हीं स्नान आदिसे शुद्ध किया जाय तो भी किसी प्रकार शुद्ध नहीं माना जाता है। मछली रात्रि दिवस पानी में रहती है परन्तु शुद्ध नहीं मानी गई है।

शौचे यत्नं सदा कार्यं शौचमूलो गृही स्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निःफलाः क्रियाः॥

भावार्थ—संस्कारों के द्वारा शुद्धि के लिये सदैव प्रयत्न करना चाहिये। क्योंकि गृहस्थधर्म शुद्ध आचरणों का मूल है। शौचाचार रहित गृहस्थ की समस्त क्रियायें निष्फल हैं।

वर्णोत्तमत्वं यद्यस्य न स्यान्न स्यात्प्रकृष्टता।
अप्रकृष्टश्च नात्मानं शोधयन्ते परान्नपि॥

महापुराण।

जिसने संस्कारों की विशुद्धि द्वारा वर्णोत्तमता (सज्जातित्व प्राप्त नहीं की है वह कदापि श्रेष्ठ नहीं है । संस्कार विहीन (असज्जाति) मनुष्य अपनी आत्माको शुद्ध नहीं कर सकता और न दूसरों को शुद्ध बना सक्ता है।

यज्ञोपवीत धारणकरने वालोंको कबसे कौन २ से व्रत पालन करने पड़ते हैं

यज्ञोपवीत आठ वर्षके बालक की अवस्थासे धारण किया जाता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यका विशुद्धकुलकी विशुद्ध संतान को अपनी आठ वर्ष की अवस्था में आगम की विधिके अनुसार यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। जिसने आठ वर्षकी अवस्था में यज्ञो-पवीत धारण नहीं किया हो वह विवाह के समय यज्ञोपवीत को विधिपूर्वक धारण करे। जिसने किसी कारण से विवाह के समय भी विधिपूर्वक यज्ञोपवींत धारण नहीं किया हो, उसको गुरु के समीप यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

गृहस्थों को किसी भी समय किसी भी कारण से यज्ञोपवीत धारण किये बिना एक क्षणमात्र नहीं रहना चाहिये जिस गृहस्थ ने यज्ञोपवीत नहीं धारण किया है वह दान देने और भगवान की पूजा करनेका अधिकारी नहीं हैं। जनेऊ पहने विना दान और भगबान की पूजा नही करनी चाहिये। जोलोग जनेऊ (यज्ञोपवीत) धारण किये विना भगवान की पूजा करते हैं वे जिनागमकी आज्ञा से बहिर्भूत हैं। कदाचित कोई अज्ञान या बिना विचारे यज्ञोपवीत धारण करने में दुराग्रह करते हैं और यज्ञोपवीत के धारण किये विना ही भगवान की पूजा करते हैं वे जिनागमकी आज्ञाको नहीं मानने वाले मिथ्यादृष्टी हैं।

यज्ञोपवीत के विना गृहस्थ शूद्र के समान है। यद्यपि शूद्र

कुलमें जन्म नहीं है तथापि संस्कारों का अभाव होने से वह एक प्रकार से शूद्र ही है।

इसलिये सबको यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिये। यह न विचार करे कि यज्ञोपवीत आठ वर्षकी उमर (आयु) में धारण किया जाता है मेरी आयु तो चालीस वर्ष की है मैं तो पचास वर्षका वृद्ध हूं। अब यज्ञोपवीत धारण करने का क्या फल होगा ? कितनी ही अपनी अवस्था क्यों न होगई हो परन्तु यज्ञोपवीत अवश्य ही धारण करना चाहिये। यज्ञोपवीत के धारण किये विना रहना है वह जिना-गम के विरुद्ध मनोनीत भावों से रहना है।

इसी प्रकार हमारे कुलमें किसी ने आज तक जनेऊ नहीं पहना है हम क्यों पहने ? ऐसे मिथ्या विचारों के कारण यज्ञोपवीत धारण नहीं करना भी जिनागम की आज्ञाको नहीं मानना है।

यज्ञोपवीत की क्रिया हमसे पालन नहीं हो सक्ती है। यज्ञोप वीत गृहस्थों से किस प्रकार धारण किया जाय। महान व्रत पालन करने वाले और महान पवित्र आचरण करने वाले ही यज्ञोपवीत धारण करते हैं। ऐसे विचार से जो गृहस्थ यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं वे जिनागमके ज्ञानसे रहित हैं। श्रावककी क्रिया के ज्ञानसे रहित हैं। उनको श्रावक के आचरणों का परिज्ञान नहीं है। शास्त्रों के पढ़लेने पर भी उनको शास्त्रका परिज्ञान नहीं है स्वाध्याय करने पर भी वे स्वाध्याय के फल से रहित हैं।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य जीवोंको निम्न लिखित व्रत यज्ञोपवीत धारण करते समय ग्रहण करने पड़ते हैं। इन व्रतों के धारण किये बिना यज्ञोपवीत धारण नहीं किया जाता है।

१ मद्य-मांस-मधुका परित्याग करना।

२ बड़फल–पीपलफल-उदम्बर (गूलर) पाकरफल और

कठूम्बरफल (एक वृक्षका फल होता है) इन पांच फलों का परित्याग करना।

३ जिनदर्शन नित्य करना।

४ रात्रिमें अन्नपदार्थ का सेवन नहीं करना।

५ पानी छानकर पीना।

६ मिथ्या देवोंको कभी किसी कारण से नमस्कार नहीं करना, न पूजना, न उनकी मान्यता करना।

७ मिथ्या शास्त्रों का श्रद्धान नहीं करना और मिथ्यागुरुको नमस्कार नहीं करना।

८ अपनी शक्ति हो तो पंच अणुव्रत धारण करना।

९ समस्त जीवों पर दयाभाव रखना।

यज्ञोपवीत धारण करने की विधी

ब्रह्मसूरि विरचित-जिनसंहिता।

अथ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां गर्भाष्टमेब्दे-आषोडशवर्षाद् युगाब्दे वा माणवकानुकूलशुभतिथौ पूर्वं चैत्यालये भगवदर्हतां महाभिषेकमेकादशविधार्चनं-१ यंत्रमंडलसमाराधनं गृहे माणवकस्य स्नानमलंकरणमुचितासनोपवेशनं। शिरसि दर्भैर्गंधोदकसेचनं। शिखावशेषकेशवापनं पुनर्मंगलस्नानं। अग्नि संधुक्षणान्ता होमक्रिया। तदग्रे शुभमुहूर्ते मंगलस्तोत्राशीर्वादपठनपूर्वकशिरःस्पर्शनोपनीतिक्रियाविधिः॥

कौपीनेनान्तर्वासो निर्विकारोत्तरीयपरिधारणं। मौंजीवन्धनं यज्ञोपवीतधारणं। ब्रह्मग्रन्थियुतशिखायामर्हत्पादशेषाधारणं। शौचा

१--संपादनं पूजनमिति वा।

चमनाद्यर्थाद्युपवेशनं । आचमनप्रोक्षणाद्यर्थतर्पणानां मंत्रतो विधापनमवशिष्टहोमक्रियानिर्वर्तनं । पुण्याहवाचनं विभूत्याबंधुभिस्सह चैत्यालयगमनं । त्रिवारचैत्यालयप्रदक्षिणा । अर्हत श्रुतगुरूणामर्चनंप्रणमनं तत्रोचितोद्देशे पंचचूर्णैर्विरचितसद्बीजाक्षरसंयुताग्निवाय्वम्बुभूनभोमंडलानांमध्येक्षतविरचितस्वस्तिके सदर्भे पद्मासनेन कुमारविनिवेशनं । तत्समीपे जलचन्दनाक्षतफलादिद्रव्यनिक्षेपणं २ परमगुरुणापि ३ शिक्षकेणार्चनं (?) द्विजोत्तमेन वा । सम्यग्दर्शनस्याणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रतानामुपदेशनमागमोक्तप्रकारेण । मद्यमांसाद्यभोज्यानां वर्जनमस्याति वालविद्याद्युपदेशनं । शिरस्पर्शनपूर्वकपंचगुरुमंन्त्रोपदेशः । सामायिकाद्यनुष्टानंत्रिसंध्याकालवन्दनया च नित्यनैमित्तिकपूजायाश्चोपदेशः ।

शांतिमंत्रेण-अङ्गस्पर्शनं । शिरसि सव्यपाणिना पंचगुरुमंत्रस्थापनं । तदापरमार्थद्विजत्वं विभ्राणेन कुमारेण सिद्धार्चनं आचार्यपूजनं देवगुरुश्रुतपितृशिक्षकज्येष्ठानां यथोचितवन्दना । स्वगृहगमनं । भिक्षायाचनं भिक्षां देहीतिवचनेनभिक्षास्वीकरणं देवतातर्पणं । बंधुगृहलब्धवस्तुसुवर्णादिकं आचार्यसंतर्पणं । उपासकाध्ययनपुस्तकार्पणमेकादशनिलयोचितमारोपणमित्यादि ।

यज्ञोपवीत किस प्रकार धारण करना ?

यज्ञोपवीत धारण करनेवाला भव्यजीव अपने वालों (क्षौरकर्म) को उस्तरा से बनवाकर शुद्ध हो मन की शल्यको दूर कर जिनागम की श्रद्धा रख कर कुलकी आम्नायको पवित्र रखने के लिये और सज्जातित्व प्रकट करने के लिये यज्ञोपवीत धारण करने की नीचे लिखे अनुसार विधि करै, क्षौरकर्म कराकर श्रीजिनेन्द्र देवका

२–सहार्थे तृतीया प्रतीयते । ३–जिनार्चनमत्र भाव्यम ।

पंचामृताभिषेक विधि पूर्वक करे। कमर में मूंजकी कंधोनी पहने, और सफेद धुले हुये, धोती दुपट्टा पहने, यज्ञोपवीत का भगवान के गंधोदक में अभिषेक करावे। यज्ञोपवीत को रत्नत्रय मानकर रत्नत्रयकी पूजन संक्षेप में करे। अपने शरीर पर गंधोदक खूब अच्छी तरह लगावे शिरपर गंधोदकका सिंचन करे। स्वस्तिक चंदन से मस्तक पर बनावे। और लघु हवन—एवं शांति और पुण्याहवाचन मंत्र पढे। इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करने की यह संक्षेप विधि है।

कदाचित इतनी विधि भी न बन सके तो क्षौरकम कराकर श्रीजिनेन्द्र देवका अभिषेक करे अभिषेक में यज्ञोपवीत का रत्नत्रयका अभिषेक पाठकर अभिषेक करे और धोती दुपट्टा नवीन पहन कर गुरु से यज्ञोपवीत ग्रहण करे।

बालकों को यज्ञोपवीत का आगमकी विधि अनुसार ही संस्कार कराना चाहिये। बालकों को यज्ञोपवीत संस्कार विधि के विना कदापि नहीं कराना चाहिये।

वृद्ध और युवाओं को भी विधि पूर्बक यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये। कदाचित विधि न हो सके तो श्रीजिनेन्द्र देवका अभिषेक कर गुरु से यज्ञोपवीत ग्रहण करना चाहिये।

एकबार यज्ञोपवीत संस्कार कराने के पश्चात् फिर यज्ञोपवीत जन्म पर्यंत धारण करना चाहिये यज्ञोपवीत दो चार दिवस या महीना के लिये नहीं पहना जाता है क्योंकि—

उपनीतिर्हि वेषस्य वृत्तस्य समयस्य च।
देवतागुरुसाक्षि स्याद्विधिवत् प्रतिपालनम् ॥

भावार्थ—यज्ञोपवीत और यज्ञोपवीत के धारण करते समय ग्रहण किये हुए व्रतों (जो देव—गुरु की साक्षी से ग्रहण किये हैं) को यावत् जीव प्रतिपालन कराना चाहिये, देवगुरु साक्षी से ग्रहण किये हुए व्रत तथा यज्ञोपवीत को विधिपूर्बक पालन करना चाहिये। ऐसा नहीं कि पूजा के समय यज्ञोपवीत धारण कर लिया और फिर छोड़ दिया। ऐसा करनेवाले व्रतखंडन करने के पाप के भागी होते हैं। व्रत का भंग करना महान पाप जिनागम में माना है।

यज्ञोपवीत श्रावण सुदी पूर्णमा (रक्षाबन्धन) के दिवस बदलना चाहिये। नवीन यज्ञोपवीत धारण करना और पुराना यज्ञोपवीत जलाशय में छोड़ना चाहिये। उस दिन भगवान श्रीजिनराज का अभिषेक करै रत्नत्रय की पूजा करै और लघु होम करै।

घर पर सूतक होने पर—मुर्दा को जलाने पर कुटम्ब में अतिशय समीप संबंधी की मृत्यु होने पर—बालक बालिका का जन्म होने पर यज्ञोपवीत को बदल लेवे।

यज्ञोपवीत टूट जाने पर बदल लेना चाहिये।

अपवित्र और मलिन विष्टा मल मूत्र रक्त आदि का संसर्ग होजाने पर यज्ञोपवीत बदल लेना चाहिये।

चांडालादि अस्पश्यं जनताने यज्ञोपवीत को छू (स्पर्श कर) लिया हो तो यज्ञोपवीत बदल लेना जाहिये।

स्पर्श शूद्र के साथ भूल या अज्ञान से खान पान होगया हो तो प्रायश्चित्त ग्रहण कर यज्ञोपवीत का पुन: संस्कार कराना चाहिये।

मद्यसेवी और मांसभक्षी के साथ भूल या अज्ञान से खान पान हो गया हो तो प्रायश्चित्त ग्रहण कर यज्ञोपवीत का पुन: संस्कार कराना चाहिये।

शूद्र पतित जातिच्युत आदि निंदित मनुष्य के साथ खान पान व्यवहार यज्ञोपवीत धारक भव्यजीव को नहीं करना चाहिये।

गौ कुत्ता बिल्ली सर्प आदि पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने पर या भूल अथवा अज्ञान से हिंसा हो जाने पर प्रायश्चित्त विधि से शुद्धि करा कर गुरु से ही पुनः यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये। यदि भावों की विशुद्धि न हो और जिनागम पर श्रद्धान न हो तो समाज उसको शूद्र के समान समझे।

यज्ञोपवीत ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ही को धारण करना चाहिये।

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि।

यज्ञोपवीत धारण करनेवाले भव्यात्माओंको सदैव यह विचार रखना चाहिये कि यज्ञोपवीत रत्नत्रय है परम पवित्र है। श्रीजिनेन्द्र भगवान की आज्ञा स्वरूप है सज्जातिकी व्यक्तता करने का मुख्य चिन्ह स्वरूप है। व्रत रूप है। श्रावक धर्म का मूल निशान है। धर्मका वीज है। शुद्धि का परम पवित्र कारण है। मोक्षमार्गकी पात्रताका आदर्श नमूना है। दान पूजादि सत्कर्म एवं सदाचार प्रवर्त्त कराने का मूल निमित्त कारण है। इसलिये यज्ञोपवीत एक प्रकारका देव है उससे किसी भी मलिन पदार्थ का संयोग न हो। मलिन अङ्ग का संसर्ग न हो मलिन स्थान में वह देव (यज्ञोपवीत) गिर नहीं जावे। इसलिये सम्यग्दृष्टी श्रावक को यज्ञोपवीत की पूर्ण रक्षा करनी चाहिये। ऐसी संभाल रखना चाहिये कि जिससे यज्ञोपवीत मलिन वस्तु से छू न जावे।

पेशाव के जाते समय पेशावकी छींटे यज्ञोपवीत पर नहीं गिर पड़ें और इन्द्रिय से यज्ञोपवीत का स्पर्श न हो जावे, इसलिये यज्ञोपवीत को दक्षिण कान पर स्थापित करना चाहिये।

मल छोड़ने के समय (शौच के समय) यज्ञोपवीत को वाम कर्ण पर स्थापित करे शिरसे लपेट कर वामकर्ण पर स्थापित करना चाहिये।

वांती (वमन उल्टी) होने के समय यज्ञोपवीत को गले में दो तीन बार लपेट लेना चाहिये। जिससे वमन के छींटे यज्ञोपवीत पर न गिरने पावें।

मैथुन करते समय यज्ञोपवींत मस्तक पर स्थापित करना चाहिये जिससे अपवित्र वस्तुका संयोग यज्ञोपवीत से नहीं हो।

इसी प्रकार मलिन वस्तु के संयोग की आशंका होने पर यज्ञोपवीत को संभाल कर उच्चस्थान में स्थापित करना चाहिये।

नोट —किसी भव्यजीव ने पेशाव करते समय या शौच जाते समय यज्ञोपवीत को उच्चस्थान (कर्णादि) पर स्थापित नहीं किया और विधी का अभ्यास नही होने से भूल जाय तो नौवार णमोकार मंत्र का जाप करने से शुद्धि हो जाती है ।।इसी प्रकार मैथुनके समय यज्ञोपवीत को मस्तक पर (शीर्ष) स्थापित करने से भूल होजाय तो नववार णमोकार मंत्र की जापदेना चाहिये। यही इसका प्रायश्चित है। रात्रिके समय यज्ञोपवीत दुहरा रखनेसे मस्तक पर स्थापन करने की विशेष आवश्यकता नहीं भी रहती है।

यह समस्त विधी आगम में बतलाई है। यथा—

शिर; प्रदेशे कर्णेवा धृत यज्ञोपवीतकः

भावार्थ—कोई भी कार्यमें यज्ञोपवीत कान या मस्तक पर धारण करे।

विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात् वामकर्णे ब्रतान्वितः।
मूत्रे तु दक्षिणे कर्णो पुरीषे वामकर्णके ॥
धारयेद् ब्रह्मसूत्रन्तु मैथुने मस्तके तथा
यज्ञोपवीतं निर्धार्य पूजायां दानकर्मणि ।

भावार्थ—गृहस्थ यज्ञोपवीत को मलमूत्र के समय मस्तक वामकर्ण और दक्षिण कर्ण पर स्थापितकरे। वमन समय गलेमें रक्खे। मैथुन समय मस्तक पर रखे पूजा और दान कर्ममें सदैव लंबायमान धारण करे आचमन तर्पण आदि क्रियायें यज्ञोपवीत से विधिविधान आगमानुसार करना चाहिये। क्षौरकर्म कराते समय यज्ञोपवीत को नाई (नापित-गांजा) से स्पर्श नहीं कराना चाहिये। इसलिये उस समय यज्ञोपवीत को पवित्रता की रक्षा के लिये कन्धे से नीचेभागमें पीठ पर उतार लेवे। या संभाल कर कार्य करे।

नोट—समस्त यज्ञोपवीत की क्रिया शरीर की सावध अवस्था में पालन की जाती है यदि रोगादिक के निमित्तसे मूर्च्छा होगई हो तो यज्ञोपवीत की पवित्रता रखने का कार्य भी शिथिल हो जाता हैं। उसका एक यही उपाय है कि आरोग्यलाभ होने पर श्रीजिनेन्द्र भगवान का अभिषेक (विधीपूर्वक) कराकर चौबीस भगवानकी समुच्चय पूजा करना चाहिये। शक्ति हो तो चौबीस महाराज का पाठ करना चाहिये और रत्नत्रय पूजा कर यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार करना चाहिये। यही प्रायश्चित्त और शुद्धि का मार्ग है।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य सम्यग्दृष्टी जीव की क्रिया में यज्ञोपवीत धारण करनेवाले भव्य सम्यग्दृष्टी जीव को नित्य स्नान

कर भगवान की पूजा करनी चाहिये यदि अवकाश न हो या कोई कारण विशेष प्राप्त हो गया हो तो अर्घ चढ़ाना चाहिये। यदि ऐसा भी अवकाश न हो तो स्नान शुद्धि कर भगवान के दर्शन नित्य करना चाहिये। कदाचित भगवान के दर्शन नहीं हो सकें—मन्दिर न हो, परदेश में जिन मन्दिर न हो तो रसका परित्याग कर णमोकार मंत्र की जाप एक देकर भोजन करना चाहिये।

जिस क्षेत्र में जिन मन्दिर का अभाव ही हो तो ऐसे क्षेत्र में निवास नहीं करना चाहिये। अथवा ऐसे क्षेत्रमें जाना ही नहीं चाहिये कि जिस में बहुत समय तक भगवान के परम पवित्र दर्शन का लाभ न हो। जो जैन अपने को बतलाते हैं और जबरन प्रसिध्द करते हैं कि हम जैन हैं। परन्तु कुशिक्षादिके कारण जिन दर्शन नहीं करते हैं, जिन दर्शन करने की श्रध्दा भी नहीं रखते हैं, जिन दर्शन में लाभ नहीं मानते वे मिथ्या दृष्टी हैं।

जिनके जिन दर्शन करने का नियम नहीं है और जिन को जिनदर्शन करनेमें अरुचि है वे जिनागम से बहिर्भूत मिथ्या दृष्टी हैं।

इसी प्रकार जो अपने को जैन कहलाते हुए भी भगवान की पूजा करने का निषेध करते हैं, अष्टद्रव्यसे पूजा करने को ढोंग बतलाते हैं वे महा मिथ्यात्वी हैं, भगवान की आज्ञा का लोप करने वाले हैं।

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिने दिने॥

यज्ञोपवीत धारक भव्य सम्यग्दृष्टी जीव को—देव पूजा गुरु की उपासना (आहारदान वैयावृत्य) २ स्वाध्याय ३

संयम ४ तप ५ और दान ६ ये छह कम नित्य करना चाहिये।

शक्ति प्रमाण षट आवश्यक कम को पुण्यात्मा यज्ञोपवीत धारक भव्य जीव नित्य ही जिनागम की श्रद्धा पूर्वक करते हैं।

षट आवश्यक कर्मों (देव पूजा गुरु उपासनादि) को पवित्र वस्त्र धारण कर और तिलक लगाकर हीं करना चाहिये।

जपो होमस्तपो दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणं।
जिनपूजां श्रुताख्यानं न कुर्यात् तिलकं विना॥

भावार्थ—जप होम तप दान स्वाध्याय-जिन पूजन और शास्त्रश्रवण करना कराना ये तिलक लगाये बिना नहीं करे।

इसी प्रकार यज्ञोपवीत धारक पुण्यात्मा भव्यजीव जिनपूजन दान (मुनि को आहार दान) शास्त्रश्रवण आदि षट कर्म एक धोती को पहन कर (आधी धोती पहन कर और आधी धोती ओढ़ कर) नहीं करना चाहिये।

एकवस्त्रो न भुंजीत न कुर्यात् देवपूजनम्!
न कुर्यात् पितृकर्माणि दानहोमजपादिकम्॥
स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृकर्मणि।
नैकवस्त्रो गृही कुर्यात् श्राद्धभोजनसत्क्रियाः॥

भावार्थ—एक वस्त्र पहन कर देव पूजन-दान-स्वाध्याय होम-जप और पितृ-कर्म में श्राद्ध भोजनादि सत्कर्म नहीं करना चाहिये। दोनों श्लोकों का यही अभिप्राय है।

यज्ञोपवीत धारण करने के मन्त्र।

नवीन यज्ञोपवीत धारण करते समय निम्न लिखित मंत्र का उच्चारण कर यज्ञोपवीत पहने——

ओं नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

दूसरा मंत्र।

अतिनिर्मलमुक्ताफलललितं यज्ञोपवीतमतिपूतं।
रत्नत्रयमितिमत्वा करोमि कलुषापहरणं महाभरणम्॥

ओं नमः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा।

तीसरा मंत्र।

केवलज्ञानसाम्राज्ययुवराजपदाप्तये।
रत्नत्रयमिदं सूत्रं कंठाभरणमादधे॥

ओं नमः रत्नत्रयस्वरूपाय यज्ञोपवीतं धारयामि स्वाहा।

नोट—जो मंत्र कंठ नहीं हो तो णमोकार मंत्र पढ़कर यज्ञोपवीत पहन लेना चाहिये।

यज्ञोपवीत कितना लम्बा होना चाहिये?

सूत्रंलंबं हस्तमानं चत्वारिंशच्छताधिकं।
तत्त्रैगुण्यं परिवृर्त्या तद्वृत्या त्रिगुणं पुनः॥

भावार्थ— एक सौ चालीस हाथ कच्चे सूतका यज्ञोपवीत बनाना चाहिये उसको तिगुणा करने पर ४६।। हाथ रहेगा । फिर उसकी तीन लर बनाने से पन्द्रह हाथ से कुछ अधिक लंबा होगा यह उत्कृष्ट प्रमाण है । मध्यम १०८ अंगुल सूतका यज्ञोपवीत होता है । बालकोंको जघन्य लम्बा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये ।

श्री भट्टाकलंक-संहिता चतुर्थपरिच्छेद—

विसोत्थेन च सूक्ष्मेण स्निग्धेनाखंडपाण्डुना ।
दृढेन ग्रन्थिवर्जेन शुचिनैकेन तंतुना ॥ १६ ॥
त्रिगुणेनैकभूतेन वलितेन प्रदक्षिणम् ।
एकीभूतत्रिवर्त्यात्मनैवं कृत्वा नवात्मना ॥ १७ ॥
पुनस्त्रिगुणितेनैव पृथक्भूतेन तेन वै ।
इति कृत्वा सप्तविंशत्यात्मना तेन शोभिना ॥ १८ ॥
सम्यग्दृग्बोधरूपेणसु सामान्यविशेषतः ।
सर्वतत्वस्वरूपेण यज्ञसूत्रेण तेन च ॥ १९ ॥

भावार्थ—यज्ञोपवीत एक कच्चे, कमलदंडके तोड़ने से निकले हुए तंतु समान सूक्ष्म चिकना अखंड सफेद गांठ रहित पवित्र तंतुका पवित्र होना चाहिए । उस सूत्रको तीन लर बना कर ऐंठना । फिर इस प्रकार एक लर में तीन तीन आवर्त्य कर २७ लरका यज्ञोपवीत बनावे । तीन लर में २७ सूत्र हों वह सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय रूप है ।

अंगुष्टमूलादाकंठनालमात्रप्रमेण च ।

अर्धोरुकप्रमाणेन वालंकुर्यात् द्विजोत्तमः ॥ २० ॥

भावार्थ—यज्ञोपवीतको कंठमें धारणकर और अंगुष्ट में लगाकर अपने हाथ घुटने की तरफ लम्बा करने पर जितना लम्बा हाथ हो उतना ही लम्बा यज्ञोपवीत होना चाहिये।

यज्ञोपवीत की गांठ

यज्ञोपवीत की गांठ अनेक प्रकार की होती है प्रतिमा धारी श्रावक और ब्राह्मणों को ब्रह्मगांठ (गोलगांठ मालाका दाना जैसी) का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

जिनको यज्ञोपवीत नहीं बनाना आता हो वे बजार का यज्ञोपवीत नवतारका पहन सकते हैं।

श्रावकके पालने योग्य क्रियायें।

(श्रावकके १७ नियम)

(१) देव शास्त्र गुरुका अविचल भावसे श्रद्धान करना।

(२) आठ मूलगुणोंको विधिपूर्वक प्रतिज्ञा लेकर धारण करना

(३) श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजन नित्य करना।

(४ सुपात्रमें आहारादिक दान देना।

(५) संघ (मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका) के साथ वात्सल्य भाव रखना।

(६) सम्यग्दृष्टी के गुणों में अनुराग रखना।

(७) भोजन शुद्धि और खानपान पदार्थों की शुद्धि नित्य रखना।

(८) अपनी संतानके संस्कार विधिपूवक कराना।

(९) जिनागमका स्वाध्याय करना, अपने बालक बालिका ओंको सबसे प्रथम अनिवार्य रूपसे जिनागम पढाना।

(१०) बालकों को कुशिक्षा और कुसंगति से रक्षा करना।

(११) पानी छान कर पीना।

(१२) शूद्र के हाथका स्पर्श किया हुआ जल घी तेल आटा और खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करना।

(१३) पंच पापों (हिंसा झूठ चोरी कुशील और तृष्णा) का परित्याग करना।

(१४) जीवदया पालन करना।

(१५) रात्रिमें अन्नका पदार्थ सेवन नहीं करना।

(१६) विधवा विवाह, जातिपांति लोप, और विजातीय विवाह नहीं करना।

(१७) * शास्त्रोक्त सूतक पातक रजो धर्मादि विधायी क्रियाओं का पालन करना और दोषोंकी सहर्ष प्रायश्चित्त विधानसे शुद्धि करना।

पंडित लालरामजी संपादित षोडश संस्कार के आधार से
यज्ञोपवीत सम्बन्धि विशेष विधि।

क्रियोपनीतिर्नामास्य वर्षे गर्भाष्टमे मतः।
यत्रापनीत केशस्य मौंजीसव्रत बन्धना ॥ १०४ ॥
कृतार्हत्पूजनस्यास्य मौंजीबन्धो जिनालये।
गुरुसाक्षिविधातव्यो व्रतार्पणपुरस्सरम् ॥ १०५ ॥

---

* शास्त्रव्यवहारदृष्ट्यैष सम्मान्यस्तत्प्रतिकूलः शास्त्रव्यवहारानभिज्ञः।

शिखी सितांशुकः सान्तर्वासो निर्वेषविक्रियः ।
व्रतचिन्हं दधत्सूत्रं तदोक्तो ब्रह्मचार्यसौ ॥ १०६ ॥
चरणोचितमन्यच्च नामधेयं तदास्य वै ।
वृत्तिश्च भिक्षयान्यत्र राजन्यादुद्धवैभवात् ॥१०७
सोन्तःपुरे चरेत्पात्र्यां नियोग इति केवलम् ।
तदग्रं देवसात्कृत्य ततोन्नं योग्यमाहरेत् ॥ १०८ ।

आदिपुराण पर्व ॥ ३८ ॥

इस संस्कार का नाम उपनीति उपनयन वा यज्ञोपवीत है। यह संस्कार ब्राह्मणों को गर्भ से आठवे वर्षमें, क्षत्रियों को ग्याहरवें वर्षमें और वैश्यों को बारहवें वर्षमें करना चाहिये।

जिस किसी ब्राह्मण की यह इच्छा होकि-मेरा बालक अधिक दिन तक ब्रह्मचारी रहकर विद्याध्ययन करे। वह उस बालक का उपनयन पांचवें वर्ष में कर देवे। जिस क्षत्रिय की इच्छा बालकको वलिष्ट बनाने की है वह छटे वर्षमें और जिस वैश्य की इच्छा अधिक द्रव्योपार्जनकी है वह अपने बालकका यज्ञोपवीत आठवें वर्षमें ही कर देवे।

यदि कारण कलापों से नियत समय तक उपनयन विधान न हो सका तो ब्राह्मणों को सोलह वर्ष तक, क्षत्रियों को बाईस वर्ष तक और वैश्यों को चौवीस वर्ष तक यज्ञोपवीत संस्कार कर लेना उचित है।

यह उपवीति संस्कार का अन्तिम समय है। जिस पुरुषका यज्ञोपवीत संस्कार इस समय तक भी नहीं हुआ है। वह पुरुष उच्छृं

खल होकर धर्मपरान्मुख हो सकता है । यज्ञोपवीत रहित पुरुष पूजा प्रतिष्ठादि करने के अयोग्य होता है ।

पुत्रोंके भेद—पुत्र सात ७ प्रकार के माने हैं, अपना खास लड़का १ अपनी लड़की का लड़का २ दत्तक (गोद) लिया हुआ ३ मोल लिया हुआ ४ पाला हुआ ५ अपनी बहिन का लड़का ६ शिष्य ७ ।

१ आचार्य—यज्ञोपवीत करानेवाला आचार्य बालकका पिता होसकता है, जो पिता न हो तो पितामह (पिताके पिता) जो वे भी न हों तो पिताके भाई (काका चाचा ताऊ वगैरह) वे भी न हों तो अपने कुलमें उत्पन्न हुआ कोई भी मनुष्य और जो ऐसा पुरुष भी न हो तो अपने गोत्रका कोई भी पुरुष आचार्य बनकर यज्ञो पवीत करा सकता है ।

यज्ञोपवीत—यज्ञोपवीत बनानेके लियेघर की स्त्रियों से ही सूत कतावे । कच्चे सूतको त्रिगुणित कर वटलेवे । तथा दूसरी बार फिर त्रिगुणितकर गांठ देकर यज्ञोपवीत बनालेवे । यज्ञोपवीत की लम्बाई ब्रह्मस्थानसे (मस्तक परके तालु छिद्र से) नाभि पर्यन्त होनी चाहिये । कम लम्बाई से रोगादि पीडा और अधिक लम्बाई से धर्म विघात होना आचार्य सम्मत है ।

यज्ञोपवीत संस्कारके मुहूर्त दिनसे दश या सात या पांच दिन पहले नान्दी विधान किया जाता है । इसकी अति संक्षेप विधि यह

---

१ यदि बालक के पिता पितामहादिक यज्ञोपवीत विधि न जानते हों तो अपने स्थान में कोई दूसरा आचार्य नियत कर सकते हैं आचार्य नियत करने की विधी नान्दी विधानमें लिखी है ।

है कि जिस दिन नान्दी विधान करना हो उसदिन बालकका पिता दो चार भाइयों के साथ आचार्य के घर जावे। यथा साध्य कुछ भेंट देकर विधी कराने की प्रार्थना करे। आचार्य उस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार करे। आचार्य समेत सब लोग वहांसे उठकर उसी समय जिनालय में आवें। दर्शन पूजनादिक कर सभामण्डपमें बैठें। इस समय आचार्य फिर स्वीकारता देवे। पश्चात् सब लोग आचार्यको घर पहुंचा कर अपने २ घर जांय।

जिस दिन शुभ ग्रह, योग नक्षत्रादिक हों उसी दिन यज्ञोपवीत की विधि करे। प्रथमही बालकको स्नान कराकर वस्त्राभूषण पहनावे तथा माता के साथ भोजन करावे। अनन्तर शिरके केशोंका मुण्डन करावे केवल शिखा शेष रहने दे। हलदी, घी, सिंदूर, दूर्वा, दर्भ आदि मिला कर बालकके शरीर से लेपन करे। थोडा विश्राम लेकर स्नान करावे। अनन्तर आचार्य पुण्याहवाचन मंत्रको पढता हुआ कुशोंसे पवित्र जल लेकर बालकको सिंचन करे।

इसी समय पुण्याहवाचन पाठ समाप्त हो जाने पर नीचे लिखे मन्त्रों से सिंचन करे " परमनिस्तारकलिंगभागी भव, परमर्षिलिंगभागी भव, परमेन्द्रलिंगभागी भव, परमराज्यलिंगभागी भव, परमार्हत्यलिंगभागी भव, परमनिर्वाणलिंगभागी भव, इन मन्त्रों से सिंचन करने के बाद बालक के शरीर को सुगन्धित द्रव्योंसे लेपन करे

अनंतर श्री जिनेन्द्र देव की पूजा और होम प्रारंभ करना चाहिये और जब यथा विधी समाप्त हो जाय, यज्ञोपवीत देने का समय निकट आ जाय तब ग्रहस्तोत्र पढ़ कर " णमो अरहंताणं " इत्यादि पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करना चाहिये। उस समय

बालक उत्तर दिशा की ओर मुख कर पद्मासन बैठ अपने जन्म की शुद्धि करनेके लिये आंखों का टिमकार बंद कर पिता के मुख को देखे। तथा पिता उसी शुभ मुहूर्त में पुत्र के सन्मुख खड़ा होकर उसके मुख को देखे। और उसके ललाट पर चंदन का तिलक लगा देवे।

अनंतर मौंजी पहनाना चाहिये। मूंज की एक पतली रस्सी बांटकर उसे त्रिगुणित कर बालक को कमर में बांधने योग्य बना लेना चाहिये और "ओं ह्रीं कटि प्रदेशे मौंजीबन्धं प्रकल्पयामि स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर बालकको कमरमें १ मौंजो और एक कौपीन (लंगोटी) बांध दे। तथा "ओं नमोर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौंजीबंधनं करोमि पुण्यबंधो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा" यह मंत्र पढ़कर मौंजो को हाथ में लेकर उसपर पुष्प और अक्षत डाले।

अनंतर बालक का पिता रत्नत्रय के चिन्हस्वरूप यज्ञोपवीत को हलदी और चंदन से रंग कर "ओं नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृताय।हैं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हंनमः स्वाहा "यहमंत्र पढ़कर उस बालकको २वह पहनावे।

ओं नमोर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्र परमेष्ठिने ललाटे शेखरं शिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरंतु ओं श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा "

---

१ इस को कटिचिन्ह अर्थात् कमर का चिन्ह कहते हैं। २ इस को उरोलिंग अर्थात् छाती का चिन्ह कहते हैं।

यह मंत्र पढ़कर ललाट पर तिलक दे, ३चोटी पर पुष्प माला रक्खे। तथा बालक नवीन धोती दुपट्टा पहने, आचमन करै। तर्पण करै और श्री जिनेन्द्र देव को एक अर्घ्य देवे।

अनंतर बालक हाथ में चन्दन अक्षत और फल लेकर दोनों हाथों को जोड़ परम निश्रेयस मोक्ष की अभिलाषा करता हुआ आचार्य से व्रत मांगे, आचार्य भी श्रावकाचारके यथोचित व्रत का उपदेश दें। बालक उन्हें सहर्ष स्वीकार करै तथा " ओं ह्रीं श्रीं क्लीं इत्यादि बीज मंत्र और णमो अरिहंताणं " इत्यादि पंच नमस्कार मंत्र भी आचार्य से सुन कर स्वीकार करै।

इस बालक का इस समय जो वेष है वह ब्रह्मचारी का है उस का यह ब्रह्मचर्य विवाह पर्यंत शुद्ध रहना उचित है।

अनन्तर अपने शरीर की उंचाईके समान लम्बा दण्डा ले। इसका ऊपर का चौथाई भाग हल्दी से रंगले। बालक यह डंडा हाथमें ले अग्नि के उत्तरकी ओर खड़ा हो और पूर्वकी ओर मुख करके तीन अर्घ्य देवे। तथा अपने आसन पर आ बैठे।

इसी समय होमकी पूर्णाहुति देना चाहिये। बालक स्वयं शमी अक्षत लाजा (खीलें) खीर घी नैवेद्यको मिलाकर तीन आहु ति देवे। ये आहुति शाँति के लिये दी जाती हैं।

फिर बालक होठों को बन्द कर मुख प्रक्षालन करे। अपने हाथों को होमकी अग्निसे सेक कर तीन बार मुखसे लगावे। तथा

---

३ चोटी शिरोलिंग अर्थात् सिर का चिन्ह माना गया है वह सब शरीर में उत्तम है क्योंकि श्री जिनेन्द्र देव के चरणाविन्द में पड़ने का सौभाग्य इसी को है।

अग्नि कीस्तुति कर उसे विसर्जन करे।

अनन्तर बालक प्रथम ही अपना दायां पैर आगे रखकर होम मण्डप से बाहर आवे प्रथम ही माके समीप जाकर (मातर्भिक्षां देहि) माता भिक्षा दीजिये ऐसा स्पष्ट उच्च स्वरसे कहे। माता भी दोनों हाथों से चांवल भरकर पुत्रको देवे। यह माता से आई हुई पहल भिक्षा श्रीजिनेन्द्रदेवके लिए अर्पण करे। मातासे भिक्षा मांगने के बाद भाई विरादरी के उपस्थित लोगों से भिक्षा मांगे सब लोग चांवल अथवा खाने योग्य कोई पदार्थ भिक्षामें देवें। भिक्षामें जो खाने योग्य पदार्थ मिले उसे बालक स्वयं खानेके काममें लावें।

यज्ञोपवीत विधी में यह भिक्षा विधी सबको करनी चाहिये। परन्तु राजपुत्र और अत्यंत समृद्धशाली धनी लोगों के लिये यह बिधि आवश्यक नहीं है।

बालक जब भिक्षा मांग रहा हो तब कुटुम्ब के बंधुवर्ग आकर उसे कहें कि वत्स ! तू अभी बालक है देशांतर जाने योग्य नहीं है इसलिए यहां ही गुरुके समीप रहकर विद्याभ्यास कर। बालक भी ये वचन सुनकर अपने यहां ही रहने की स्वीकारता देवे और भिक्षा मांगना बंद करदे।

अनंतर सब लोक बालक के साथ साथ श्रीजिनालय में जावें और दर्शन पूजनादि कर वापिस आवें।

उस दिन साधर्मी भाई विरादरी को भोजन कराना चाहिये तथा वस्त्र तांबूलादि उनको भेंटकर उनका सत्कार कराना चाहिये।

महीने महीने बाद यज्ञोपवीत बदलना चाहिये श्रावण महीने में श्रावणी (पूर्णिमा) के दिन अति संक्षेप से होमादि क्रिया कर

यज्ञोपवीत बदलना चाहिये।

यज्ञोपवीत होने के एक वर्ष बाद से नित्य संध्या १ बंदनादि क्रिया करना उचित है।

यज्ञोपवीत की संख्या—विद्यार्थी को तथा नियत काल-तक ब्रह्मचर्य धारण करने वालों को एक, गृहस्थों को दो यज्ञोपवीत धारण करना योग्य है। जिन गृहस्थों के पास दुपट्टा न हो तो उसे तीन पहनना चाहिये। जिसे अधिक जीवित रहने की इच्छा है वह दो किंवा तीन पहने और जिसे पुत्र की इच्छा है अथवा जिसे धार्मिक होने की इच्छा है वह पांच यज्ञोपवीत पहने।

एक यज्ञोपवीत पहन कर जप होमादि करना अयोग्य है क्योंकि ऐसा करने से सब व्यर्थ होता है।

जो यज्ञोपवीत गिरजाय अथवा टूट जाय तो स्नानकर अथवा स्नान का संकल्प कर दूसरा नवीन यज्ञोपवीत पहनना चाहिये। पहनते समय कहो " ॐनमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतायार्हं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा " यह मंत्र पढ़ना योग्य है।

एक २ यज्ञोपवीत के लिये पृथक् २ एक २ बार मंत्र पढ़ना चाहिये। यदि एक बार ही मंत्र पढ़ कर दो तीन अथा पांच यज्ञोप-

---

१ वर्षेतीते त्रिकालेषु संध्यावन्दनसत्क्रियां।
सदा कुर्यात् स पुण्यात्मा यज्ञोपवीतधारकः॥

संध्यावन्दनादि की विधि जैन शास्त्रों में मिलती है उसकी छपी पुस्तकें भी प्राय जैन पुस्तकालयों में मिलेगी।

वीत धारण किये जायंगे तो किसी एक के टूटने से सब टूटे हुए समझे जायंगे।

जो यज्ञोपवीत उतर जाय अथवा टूट जाय तो उसे किसी जलाशय (नदी तालाव आदि) में डाल दे।

ब्राह्मणों को सूतका राजाओं को सुवर्णका और वैश्योंको रेशम का यज्ञोपवीत पहनना चाहिये।

व्रतावतरण।

व्रतचर्यामहं वक्ष्ये क्रियामस्योपबिभ्रतः।
कट्यूरुरःशिरोलिंगमनूचानव्रतोचितं ॥ १०६ ॥

आदिपुराण पर्व ३८ ॥

यज्ञोपवीतके बाद विद्याध्ययन करने का समय है। विद्याध्ययन करते समय कटिलिंग (कमरका चिन्ह) ऊरुलिंग (जंघाका चिन्ह) उरोलिंग (छाती का चिन्ह) और शिरोलिंग (शिर का चिन्ह) धारण करना चाहिये।

१ **कटिलिंग**—इस विद्यार्थी का कटिलिंग त्रिगुणित मौंजी बंधन है। जो कि रत्नत्रय का विशुद्ध अङ्ग और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का चिन्ह है।

२ **ऊरुलिंग**—इस विद्यार्थी का ऊरुलिंग धुली हुई सफेद धोती है जो कि जैनमत को पालन करनेवालों के पवित्र और विशाल कुल को सूचन करती है।

१--कटिलिंगं भवेदस्य मौंजीबंधं त्रिभिर्गुणैः।
रत्नत्रयविशुध्यंगं तद्धि चिन्हं द्विजन्मनां ॥ ६९ ॥

२--तस्येष्टमूरुलिंगं च सधौतसितशाटकं।
आर्हतानां कुलं पूतं विशालं चेति सूचने ॥ ७० ॥

३ **उरोलिंग**—इस विद्यार्थी का हृदय का चिन्ह सात सूत्रों से बनाया हुआ यज्ञोपवीत है यह यज्ञोपवीत सात परम स्थानों का सूचक है* ।

४ **शिरोलिंग**—विद्यार्थीका शिरोलिंग शिर का मुण्डन करना है । जो कि मनवचनकायकी शुद्धता का सूचक है ।

प्रत्येक विद्यार्थी को ऊपर कहे हुए चारों चिन्ह धारण कर ब्रह्मचर्यकी विशुद्धताके लिये अहिंसादि अणुव्रत धारण करना चाहिये ।

ऐसे विद्यार्थी को लकड़ी की दतौन ताम्बूल अंजन और उबटनादि लगाकर स्नान करना अनुचित है । उसे शरीर की शुद्धि के लिये केवल दिन में स्नान करना चाहिये ।

ऐसा विद्यार्थी पलंग चारपाई आदिपर न सोवे, न किसी दूसरे शरीर से अपना शरीर रगड़े । या भूमिपर अकेला ही सोवे । इसी में इस के व्रतकी शुद्धता रह सकती है ।

३--उरोलिंगमथास्य स्याद्ग्रथितं सप्तभिर्गुणैः ।
यज्ञोपवीतकं सप्तपरमस्थान सूचकं ॥ ७१ ॥

* सप्त परमस्थानों के नाम—सज्जाति परमस्थान, सद्गृहस्थ परमस्थान, पारिव्राज्य परमस्थान, सुरेंद्र परमस्थान, साम्राज्य परमस्थान, आर्हंत परमस्थान, और निर्वाण परमस्थान ,

सज्जाति सद्गृहस्थत्वं पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता ।
साम्राज्यं परमार्हंत्यं निर्वाणं चेति सप्तधा ॥

४--शिरोलिंगं च तस्येष्टं परं मौण्ड्यमनाविलं ।
मौण्ड्यं मनोवचः कायगतमस्योपबृंहितं ॥ ७२ ॥

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् इस विद्यार्थीका प्रथम ही उपासकाचार (श्रावकाचार) गुरुमुखसे पढना चाहिये गुरुमुखसे पढ़ने का अभिप्राय यह है कि श्रावकों की बहुतसी ऐसी क्रियायें हैं जो अनेक शास्त्रों के मन्थन करनेसे निकलती हैं गुरुमुखसे वे सहज ही प्राप्त हो सकती हैं। श्रावकाचार पढ़ने के बाद न्याय, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि पारमार्थिक लौकिक विद्यायें पढे।

यह बालक जबतक विद्याध्ययन करेगा तबतक उसके ये ही भेष और व्रत रहेंगे। जब विद्याध्ययन समाप्त हो जायगा तब इसका यह १वेष और व्रत जांयगे और गृहस्थों के जो मूल गुण व्रत होते हैं वे ही इसके होंगे।

श्रावण मास और श्रवण नक्षत्र में पूर्वके समान होमादि क्रिया करके कटिलिंग मौंजी का त्याग करे गुरु की साक्षी पूर्वक वस्त्र पहने ताम्बूल खाय और शय्यापर सोवे। उसी समय आभरण और माला आदि पहने। जो वह लड़का शस्त्रोपजीवी क्षत्रिय है तो वह शस्त्र धारण करे और जो वैश्य है तो व्यापारादिमें लगजाय।

यज्ञोपवीत के दिवस श्रावण सुदी पूर्णिमां रक्षा बन्धनकी क्रिया

श्रीमान सेठ मेवाराम जी रानी वाले के भंडार से प्राप्त।

ब्रह्मसूरि त्रिवर्णाचार

श्रावणे स्नानतर्पणानन्तरं-अद्य भगवते पौर्णमास्यां तिथौ

---

१ पहले कहा जा चुका है कि यह वेश और व्रत इसके विवाह पर्यंत रहते हैं सो ही आचार्योंका मत है। "द्वादशवर्षा कन्या षोडष वर्षः पुमान् तौ प्राप्त व्यवहारौ,, अर्थात् बारह वर्षकी कन्या और सोलह वर्षका पुरुष ये दोनों ही विवाह करने योग्य हैं इसलिये पुरुष को सोलहवें वर्ष में ही यह वेष त्यागना उचित है।

श्रवण नक्षत्र युक्तायां सर्वोत्तमे पर्वणि दुःखमसुखमाभिधान तुरीय काल प्रारम्भे आधित्यध्यापनादि विशिष्ट कर्मानुष्ठान परायण ब्राह्मणा-भिजन विदित्सायां आद्येन चक्रिणा अंत्येन वेधसा षोडषतमेन कुल धरेण राजर्षिणा भरतेश्वरेण मंगलार्थं परीक्षार्थसमुत्पादित सर्वधान्यां कुरप्रसारित प्रदेशे परीक्ष्येण सम्यग्दृशो ब्राह्मणाः ब्रह्मोपलक्षितयज्ञसूत्रं संधा रणादाविर्भूताःतेषांयज्ञोपवीतसंधारणार्थं विधीयमानस्य होमकर्मणोअनादिमुखे पुण्याह वाचनां करिष्ये इति श्रावण संकल्पः । आज्य समिधाहूतिं विधाय यज्ञोपवीत मंत्रेण यज्ञोपवीताहूतिं दत्वा यज्ञो पवीतं संधार्य आचम्य ओं भूर्भुवः स्वाहा इत्यादिना तिलहोमं कृत्वा वाचनां गृह्णीयात् तद् ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थानां ।

इति श्रावण विधिः

गर्भाष्टमें विप्राणां, नवमे क्षत्रियाणां, दशमे वैश्यानां उपनीति क्रिया भवति अगतिगत्या चेत् विवाहे अवश्यमेव कार्यं । वा चतुर्विंशतितमे वर्षे ।

तत्र कुमारस्य केशवापन पूर्वकं चतुष्कोण कलशादीन स्नान वाचनां जिनार्चनां कृत्वा ओं नमः परमशांताय शांति कराय पवित्रीकृतांगायार्हं रत्नत्रय स्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु भवतु अर्हंनमः स्वाहा । ओं नमोर्हते भगवते तीर्थंकर परमेश्वराय कटिसूत्रं कौपीनसहितं मौंजीबंधं करोमि पुण्यबंधो भवतु असिआ उसा स्वाहा ।। ओं नमोर्हते भगवते तीर्थंकरपरमे श्वरायकटिसूत्रं परमेष्ठिने ललाटेशेखरं शिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ओं श्रीं ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा । नवीन वस्त्रोत्तरीय परिधानं पूर्ववत् कुर्यात् पश्चादाचमन पूर्वकं नवी नौन्दुम्बर विष्टरे प्राङ्मुख मुत्तरमुखं वा उपविश्य सुमुहूर्ते उपाध्यायः

पिता वा कुमारस्य मुकुलितौ स्वहस्तौ स्वहस्ताभ्यां धृत्वा ओं श्रीं ह्रीं क्लीं कुमारस्योपनयनं करोमि अयं विप्रोत्तमो भवतु असिआउसा स्वाहा, इति त्रिरुच्चार्य पंचनमस्कार मुपदिशेत् तदनन्तरं होम दानादिकं कुर्यात्।

ततः प्रागुक्त प्रात रुत्थानादिकं सदाचरणं विधेयं चतुर्थदिने पूर्ववत् स्नानपुण्याहजिनार्चनं होमं बिधाय शोभनां वसतिं गत्वा त्रिपरीत्य जिनान् गुरून् समभ्यर्च्य बंदित्वा स्वगृहे शिष्टबन्धु जनैः सह भुंजीत। तदुपनीते तेन शिरो मुंडनं कटिसूत्रं कौपीन मौंजिबंधनं ब्रह्मचर्य षणमास पर्यन्तं संवत्सरत्रय पर्यन्तं वा विधेयं।

जनेऊ बनाने की विधि।

जनेऊ ९६ चौक (चार अंगुलियों के एक साथ जोड़ने को चोक कहते हैं) का होता है ऐसा आगम प्रमाण है। इस प्रकार एक चोकके तीन अविछिन्नतंतु सौभाग्यवती स्त्री या कन्या के हाथ से काते हुए लेकर एक लर करना चाहिये। चोक से ही सूतका प्रमाण क्यों बतलाया ? इस प्रश्नका समाधान यह है कि चार पुरुषार्थ की शुद्धि रत्नत्रय धारक पुरुष को ही होती है। उसको त्रिगुणित करने पर २७ तत्व वेष्टित नव देवता (अरहंत—सिद्ध—आचार्य—उपाध्याय—सर्व साधू—जिनागम—जिन धर्म—जिन चैत्य और जिन चैत्यालाय) के स्वरूप का बोध होता है। पुनः त्रिगुणित किया हुआ वह यज्ञोपवीत तीन लर का तीन रत्नत्रय का बोध कराता है। यज्ञोपवीत की ग्रन्थी ओं तत्व का ध्यान कराती है।

होम विधि।

आधानादि निखिल संस्कारों में होम करना अत्यावश्यक है। होम की संक्षेप विधि इस प्रकार है।

संस्कारों में जो होमादि क्रिया की जाती है वह प्रायः घर पर ही होती है। इस लिये घर के किसी उत्तम भाग में आठ हाथ लम्बी आठ हाथ चौड़ी एक हाथ ऊंची तीन कटनी की एक वेदी* बनावे। इस वेदी के ऊपर पश्चिम की ओर एक हाथ जगह छोड़ कर एक हाथ लम्बी एक हाथ चौड़ी एक हाथ ऊंची एक छोटी वेदी और बनावे इस में भी तीन कटनी हों। इस छोटी वेदी पर श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा स्थापन करे। प्रतिमा के सामने तीन छत्र तीन चक्र (धर्म चक्र) और स्वस्तिक (साथिया) स्थापन करे, प्रतिमा के दाईं ओर यक्ष और बाईं ओर यक्षी को स्थापन करे।

इस छोटी वेदी के सामने एक हाथ जगह छोड़कर तीन कुंड बनावे, बीचकाकुंड एक अरत्नि* लम्बा एकअरत्नि चौड़ा एकअरत्नि गहरा चतुष्कोण (चौकोर) बनावे इसकुंड के ऊपर के भाग में चारों ओर तीन तीन मेखला बनावे।

इस कुण्ड के दक्षिण की†ओर (दाईं ओर) त्रिकोण कुंड

---

*यह वेदी कुंड आदि सब मुहूर्त से एक दो दिन पहले तैयार किये जाते हैं। यदि कहीं पर एक दो दिन पहले तैयार करने का समय न मिले और उसी समय तैयार कराने की आवश्यकता आपड़े तो पृथ्वी पर ही रंगावली से तीन प्रकार के रंगों से एक हाथ लम्बा चौड़ा चौकोर पूरकर कुंड बना लेना चाहिये और उसी में होम करना चाहिये।

*(बद्धमुष्टिकरोरत्नि) मुट्ठी बंधे हुये एक हाथको अरत्नि कहते हैं। यह एक हाथ से चार पांच अंगुल कम होता है।

† इस प्रकरण में जिधर प्रतिमा का मुख हो वह पूर्व दिशा मानी जाती है। इसी दिशा के अनुसार और दिशायें कल्पना करना चाहिये

बनावे इस कुण्ड की तीनों भुजायें एक एक अरत्नि लम्बी हों गहराई भी एक ही अरत्नि हों, तीनों भुजाओं में चतुष्कोण कुण्ड के समान मेखला भी तीन तीन हों। तथा चतुष्कोण कुण्ड के उत्तर की ओर गोल कुण्ड बनावे जिसका व्यास और गहराई एक अरत्नि हो, तथा मेखला भी तीन हों।

इन सब कुण्डों की मेखलाओं में से प्रथम मेखला की चौड़ाई उंचाई पांच मात्रा (पांच अंगुल) द्वितीय मेखला की चार मात्रा और तृतीय मेखला की चौड़ाई ऊंचाई तीन मात्रा होनी चाहिये। तथा प्रत्येक कुण्ड का अन्तर एक मात्रा का होना चाहिये।

इन कुण्डों की आठो दिशाओं में आठ दिक्पालों के पीठ (स्थान) बनावे। यह सब बनाकर जलादिक से शुद्धता कर सब की पूजा करे प्रथम ही चतुष्कोण को त्रिकोण को और फिर गोल कुण्ड को जल चन्दनादिक से चर्चे।

इनमें से चतुष्कोण को तीर्थंकर कुण्ड, त्रिकोण को गणधर कुण्ड और गोल कुण्ड को शेष केवली संज्ञा है, तथा चतुष्कोण की अग्नि की गार्हपत्य त्रिकोण कुण्ड की अग्नि को आहवनीय और वृत्त कुण्ड की अग्नि की दक्षिणाग्नि संज्ञा है। बड़ी वेदी के चारों कोनों पर चार खम्ब खड़े करे, ऊपर चंदोवा बांधदे। खम्भों के सहारे से ऊख और केलेके वृक्ष सुशोभित करे। तथा घन्टा तोरण माला मोतियों की माला आदि से सुसज्जित करे, तथा चमर, दर्पण, धूप घट, करताल, (पंखा) ध्वजा, कलशा आदि द्रव्य भी यथा स्थान रक्खे।

विशेष— ऊपर तीन कुण्ड बनाने की विधि लिखी है। परन्तु यदि और भी संक्षेप करना हो तो एक चतुष्कोण से ही काम चल

सक्ता हैं एक चतुष्कोण कुण्ड ही बनाकर उसमें सब आहुति डालनी चाहिये।

स्रुक् और स्रुवा।

अग्नि में जिस पात्र से होम द्रव्य डाले जाते हैं उसे स्रुवा कहते हैं। तथा जिस से घी डालते हैं उसे स्रुक कहते हैं क्षीरवृक्षका (वट वृक्ष जिस को वरगद कहते हैं) स्रुक और चन्दन का स्रुवा बनावे जो ये दोनों लकड़ी न मिलै तो दोनों पीपल की लकड़ी के बनावे जो पीपल की लकड़ी भी न मिले तो दोनों के बदले पीपल के पत्ते काम में लावे। जो पीपलके पत्ते भी न हों तो पलाश (ढाक) अथवा बरगद के पत्ते काम में लावे।

स्रुक गौ की पूंछ के समान लम्बे मुख का बनावे तथा स्रुवा नाक के समान चौड़े मुख का बनावे। इन दोनों की लम्बाई एक एक अरत्नि हो। जिसमें से नाभि दण्ड छः अंगुल का हो।

समिधा

जो लकड़ी होम में डाली जाती है उसे समिधा कहते हैं। पीपल पलाश शमी (वृक्ष विशेष) तथा बरगद की लकड़ी की समिधा बनानी चाहिये। समिधा की प्रत्येक लकड़ी सीधी तथा दश अथवा बारह अंगुल लम्बी होनी चाहिये। शमी की लकड़ी तोडने के दिन से छः महीने तक होम के काम में आ सक्ती है खदिर (खैर) और पलाश की लकड़ी तीन महीने तक और पीपल की लकड़ी रोज की रोज काम में आती है। अपामार्ग और अर्क (आक) एक दिन का तथा बरगद उदंबर आदि की लकड़ी तीन दिन की काम में आ सक्ती है जो समिधा की कोई लकड़ी न मिले तो समिधा के बदले

कुश काम में लाने चाहियें। कुश एक महीने पहले तोड़े हुये काम में आ सक्ते हैं और दूर्बा (दूब) उसी समय तोड़कर काम में लानी चाहिये।

प्रतिमा के दाईं ओर धर्म चक्र बाईं ओर छत्रत्रय सामने पूर्ण कुम्भ और अगल बगल यक्ष यक्षी को स्थापन करे।

होम करने वाला कुंडों के पूर्व दिशा की ओर दर्भासन पर पद्मासन मार कर पश्चिम की ओर (प्रतिमा के सन्मुख) मुख कर बैठे। होमादि द्रव्यों को यथास्थान स्थापन कर परिचारकोंको (सहायता देने वालोंको) अपने अपने काममें नियुक्त करे। होमकी समाप्ति पर्यन्त मौन व्रत धारण कर परमात्मा का ध्यान कर श्रीजिनेन्द्र देवको अर्घ्य दे, तर्पण कर बीच के तीर्थंकर कुण्डमें सुगन्धि द्रव्यसे अग्नि मंडल लिखे। अग्निमंडल का चित्र यह है—

अनन्तर एक दर्भपूलमें थोड़ा सा लाल कपड़ा लपेट कर मन्त्र पढ़ते हुए अग्निको जलावे साथ में घी भी डालता जाय।

अग्नि जलानेके बाद आचमन प्राणायाम, और स्तुतिकर अग्निका आह्वानन करे तथा एक अर्घ्य देवे।

फिर गार्हपत्य अग्निमें से थोड़ी सी अग्नि लेकर उत्तर दिशा के गोल कुण्ड में अग्नि जलावे तथा गोलकुण्ड में से अग्नि लेकर दक्षिण दिशाके त्रिकोण कुण्ड में अग्नि जलावे।

होम करने वाला हाथको ऊंचा उठाकर उंगलियोंको मिलाकर उंगलियोंपर अंगूठेको रखकर मन्त्र पढ़ता हुआ आहुति देवे।

बीचमें जो घीकी आहुति दी जाती है वह इसप्रकार देवे कि जिससे अग्नि की ज्वाला बढ़ जाय। जो ज्वाला अधिक बढ़ गई हो तो दर्भपूलसे गायके दूधका सिंचन करे।

बालुका होम।

भूमिको गोमय (गोवर) से लीपकर उसपर गन्धोदक का छिड़काव देकर एक हाथ लम्बी एक हाथ चौड़ी भूमिमें नदीकी बालू बिछावे। उसपर पीपल अथवा अन्य वृक्षोंकी लकड़ियोंको शिखर के आकार बनाकर रक्खे। फिर उसको प्रज्वालन कर (जलाकर) नव ग्रह तिथि देवता दिक्पाल और शेष देवोंके लिये उसमें आहुति देवे।

इसमें भी आचमन तर्पणादिक पूर्व होमोंके समान ही किया जाता है।

होम कब करना चाहिये।

व्रतावतरण, विवाह, सूतक, पातक, जिन मन्दिर प्रतिष्ठा, नूतन गृहनिर्माण (नयाघर बन जाने पर) ग्रहपीडा और महारोगादिकको शान्ति करने के लिये तथा आधानादि विधानो में होम करना चाहिये। तर्पण—पुष्प अक्षत, चन्दन और शुद्ध जलसे करना चाहिये।

होम के भेद।

होम तीन प्रकार है। जलहोम, वालुकाहोम और कुण्ड होम।

जल होम।

जल होमके लिये मिट्टी अथवा तांबेका गोलकुण्ड होना चाहिये, जो चन्दन, अक्षत, माला आदिकसे सुशोभित हो, जिसमें उत्तम जल भरा हो और जो धोये हुये शुद्ध चावलों के पुंजपर रक्खा हो ऐसे जलकुण्डमें दिक्‌पाल और नवग्रहोंको आहुति देवे। दिक्‌पालोंको सात धान्योंसे और नवग्रहोंको तीन धान्यों से आहुति देवे अन्त में नारियल अथवा और किसी पके फलसे पूर्णाहुति देवे।

सप्त धान्य—चना, उड़द, मूंग, गेहूं धान, जौ, तिल,।
तीन धान्य—तिल, धान्य, जौ।

होम विधि।

श्रीमङ्गलाष्टक

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्रमुकुटप्रद्योतरत्नप्रभा।
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः॥
ये सर्वेजिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः।
स्तुत्यायोगिजनैश्चपंचगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलं॥ १॥
सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं।
मुक्तिश्रीनगराधिनाथजिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः॥
धर्मःसूक्तिसुधाचचैत्यमखिलं चैत्यालयंश्र्यालयं।

प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलं ॥
नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवनेख्याताश्चतुर्विंशतिः ।
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश ।
ये विष्णुप्रतिविष्णुलांगलधराः सप्तोत्तरा विंशति ।
स्त्रैकाल्येप्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥
देव्योष्टौ च जयादिकाद्विगुणिताविद्यादिकादेवताः ।
श्रीतीर्थङ्करमातृकाश्चजनकायक्षाश्चयक्ष्यस्तथा ।
द्वात्रिंशत्त्रिदशाप्रहास्तिथिसुरादिक्कन्यकाश्चाष्टधा ॥
दिक्पालादशचेत्यमीसुरगणाः कुर्वन्तु ते मङ्गलं ॥
ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसोऋद्धिंगताः पंच ये ।
ये चाष्टांगमहानिमित्तकुशला येष्टौविधाश्चारणाः ॥
पंचज्ञानधरास्त्रयोपि बलिनो ये बुद्धिवृद्धीश्वराः ।
सप्तैतेसकलार्चितागणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलं ॥
कैलाशेवृषभस्यनिर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे ।
चम्पायां वसुपूज्यसज्जिनपतेः सम्मेदशैलेर्हतां ।
शेषाणामपिचोर्जयन्तशिखरेनेमी श्वरस्यार्हतो ।
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवा कुर्वन्तु ते मंगलं ॥
ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौस्थिताः ।
जम्बूशाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षाररूप्याद्रिषु ॥
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे ।
शैले ये मनुजोत्तरेजिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलं ॥ ७
यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो ।
यो जातः परिनिष्क्रमेणविभवो य केवलज्ञानभाक् ॥
यः कैवल्यपुरः प्रवेशमहिमा संभावितःस्वर्गिभिः ।

कल्याणांनिचतानि पंच सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलं ॥
आकाशंमूर्त्यभावादघकुलदहनादग्निरुर्वीक्षमाप्त्या ।
नैःसंग्याद्वायुरपःप्रगुण समतयास्वात्मनिष्ठैः सुयज्वः
सोमः सौम्यत्वयोगाद् रविरितिच विदुस्तेजसः सन्निधाना
द्विश्वात्मा विश्वचक्ष वितरतु भवतांमंगलं श्रीजिनेशः
य कर्ता जगतां यमेंकपुरुषं भव्या समाचक्षते ।
येनादेशिहिताहितं मुनिजना यस्मै नमस्कुर्वते ।
यस्माद्वेदपरम्परासमुदिता श्रीर्यस्य नित्यास्पदा ।
यस्मिन्नेव जगत्स्थितं स जिनपोनिश्रेयसायास्तुवः ॥ १०
इत्थं श्रीजिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसम्पत्प्रदं ।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः ॥
ये श्रण्वंति पठंति तैश्च सूजनैर्धर्मार्थकामान्विता ।
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥

"इतिमंगलाष्टकं समाप्तम्"

प्रथम ही होमशाला में जाकर ओं ह्रीं क्ष्वीं भूः स्वाहा" यह मन्त्र पढ़कर एक पुष्पांजलि भूमि में देवे । ओं ह्रीं अत्रस्थक्षेत्रपालाय स्वाहा यह मंत्र पढकर क्षेत्रपाल को बलि अर्थात नैवेद्य देवे । "ओं ह्रीं वायुकुमाराय सर्वविघ्न विनाशाय महीं पूतां कुरु कुरु हूं फट् स्वाहा" (इति भूमि सम्मार्जनम्)

यह मंत्र पढ़कर दर्भपूलसे भूमि शोधन करे । अर्थात् दर्भपूल (थोड़े से दाभोंकी गट्ठी) से भूमिको झाड़े ।

"ओं ह्रीं मेघकुमाराय धरां प्रक्षालय प्रक्षालय अं हं सं तं पं स्वं झं झं यं क्षः फट् स्वाहा" (इति भूमिसेचनम्)

यह मन्त्र पढकर भूमिपर दर्भपूलसे थोड़ा पानी छिड़के।
ओं ह्रीं अग्निकुमाराय ह्म्ल्व्र्यूं ज्वल ज्वल तेजः पतये अमिततजसे स्वाहा। (इतिदर्भाग्निज्वालनम्।)

यह मन्त्र पढ़कर थोड़े सूके दाभ उस भूमिपर जलावे।
"ओं ह्रीं क्रौं षष्ठिसहस्रसंख्येभ्यो नागेभ्यः स्वाहा' (इतिनागतर्पणम्)

यह मन्त्र पढ़कर नागोंको एक अर्घ्य देवे।

ओं ह्रीं भूमिदेवते इदं जलादिकमर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा (इतिभूम्यर्चनम्)

यह मन्त्र पढ़कर भूमिकी पूजा करनेके लिये एक अर्घ्य देवे।

ओं ह्रीं अर्हं क्षं वं वं श्रीपीठस्थापनं करोमि स्वाहा' (इति होमकुण्डात्प्रत्यक् पीठस्थापनम्)

यह मंत्र पढ़कर होमकुण्डके पश्चिमकी ओर एक सिंहासन स्थापन करे

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः स्वाहा, (श्रीपीठार्चनम्)
यह मंत्र पढ़कर सिंहासनकी पूजा करे। अर्थात् एक अर्घ देवे।

"ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं जगतां सर्वशांतिं कुर्वन्तु श्रीपीठे प्रतिमास्थापनं करोमि स्वाहा।" (श्रीपीठे प्रतिमास्थापनम्।)

यह मन्त्र पढ़कर सिंहासन पर प्रतिमा स्थापन करे।

ओं ह्रीं अर्हं नमः परमेष्ठिभ्यः स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हंनमः परमात्मकेभ्यः स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमोनादिनिधनेभ्यः स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमो नृसुरासुरपूजितेभ्यः स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमोनन्तज्ञानेभ्यः स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमोनन्तदर्शनेभ्य स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमोनन्तवीर्येभ्यः स्वाहा। ओं ह्रीं अर्हं नमोनन्तसौख्येभ्यः स्वाहा (इति अष्टा-

भिमन्त्रैःप्रतिमार्चनम्) यह आठ मन्त्र पढ़कर प्रतिमाकी पूजन करे।

ओं ह्रीं धर्मचक्रायाप्रतिहततेजसे स्वाहा (इति चक्रत्रयार्चनम्) यह मन्त्र पढ़कर चक्रत्रय का पूजन करे।

ओं ह्रीं श्वेतछत्रत्रय श्रिये स्वाहा (इति छत्रत्रय पूजनम्) यह मंत्र पढ़कर छत्रत्रय को एक अर्घ देवे ।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं ह्सौं ह्रौं सर्वशास्त्रप्रकाशिनि वद वद वाग्वादिनि अवतर अवतर अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः सन्निहिता भव भव वषट् क्लूं नमः सरस्वत्यै जलं निर्वपामि स्वाहा एवं गन्धाक्षतपुष्पचरुदीपधूपफलवस्त्राभरणादिकम् (इति प्रतिमाग्रे सरस्वती पूजा)

यह मन्त्र पढ़कर प्रतिमा के आगे जल गंधाक्षतादिक से सरस्वती की पूजा करे।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र पवित्रतरगात्रचतुरशीतिलक्षण-गुणाष्टादशसहस्रशीलधरगणधरचरणाःआगच्छत आगच्छतसंवोषट् अत्र तिष्ठित तिष्ठित ठः ठः सन्निहिता भवत भवत वषट् नमो गणधरचरणेभ्यः जलं निर्वपामि स्वाहा। एवं गंधाक्षतपुष्पादिकम् । (इति गुरु पादपूजा) इस मन्त्र से गुरु की पूजा करे।

ओं ह्रीं कलियुगप्रबन्धदुर्मार्गविनाशन परमसन्मार्गपरिपालन भगवनयक्षेश्वरजलार्चनं गृहाण गृहाण (इति जिनस्य दक्षिणे यक्षार्चनम्) यह मन्त्र पढ़कर श्रीप्रतिमाके दक्षिण भाग में यक्ष देव की पूजा करे।

ओं ह्रीं कलियुग प्रबन्धदुर्मार्गविनाशिनिसन्मार्गप्रवर्तिनि भगवति यक्षीदेवते जलाद्यर्चनं गृहाण (इति वामभागेशासनदेवतार्चनम्)

इस मन्त्र से श्री प्रतिमाके वाम भाग में शासन देवता की पूजा करे।

ओं ह्रीं उपवेशनभूः शुध्यतु स्वाहा (इति होमकुण्डपूर्वभागे दर्भपूलेनोपवेशनभूमिशोधनम्)

यह मन्त्र पढ़ कर होम कुण्ड के पूर्वभाग में बैठने की भूमि शुद्ध करे।

ओं ह्रीं परब्रह्मणे नमो नमः ब्रह्मासने अहमुपविशामि स्वाहा (इति होमकुण्डाग्रे पश्चिमाभिमुखं होता उपविशेत्)

यह मन्त्र पढ़ कर होम करने वाला होम कुण्ड के पश्चिम की ओर मुख कर बैठे।

ओं ह्रीं स्वस्तये पुण्याहकलशं स्थापयामि स्वाहा। (इति शालिपुंजोपरिफलसहितपुण्याहकलशस्थापनम्।)

यह मन्त्र पढ़ कर एक चावलों का पुंज रख कर उस पर पुण्याहवाचन का कलश स्थापना करे। कलश पर। नारियल अथवा और कोई फल अवश्य होना चाहिये।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते पद्ममहापद्मतिगंछकेसरि पुण्डरीकमहापुण्डरीकगंगासिंधुरोहि तरोहि तास्याहरिद्धारि कांता सीता सीतो दा नारीनरकांतासुवर्णरूप्पकूलारक्तारक्तोदा—पयोधिशुद्ध जल सुवर्ण घटप्रक्षालित रत्न गन्धाक्षतपुष्पो–र्चितमामोदकं पवित्रं कुरु कुरु झं झं झ्रौं झ्रौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः। (इति जलेन प्रसिज्य जलपवित्रीकरणम्)

यह मन्त्र पढ़ कर उस स्थापन किये हुए कलशका जल पवित्र करे। अर्थात् उपर्युक्त मंत्र पढ़ते हुए दूसरे जलसे उस स्थापन किये हुए कलश को सींचे। उस कलश पर थोड़ा २ पानी डाले।

ओं ह्रीं नेत्राय संवौषट् (इति कलशार्चनम्) यह मंत्र पढ़ कर कलश की पूजा करे।

अनन्तर होम करने वाला आचार्य बायें हाथ में कलश लेकर पुण्याहवाचन पढ़ता हुआ दायें हाथ से भूमि को सींचे अर्थात् भूमि पर थोड़ा २ पानी डाले। पुण्याहवाचन पूरा होजाने पर उस कलश को कुण्ड के दक्षिण भाग में स्थापन करदे। पुण्याहवाचन मंत्र यह है—

पुण्याहवाचन मंत्रः।

ओंपुण्यांहपुण्याहंप्रीयन्तां प्रीयंतांभगवन्तोर्हन्तःसर्वज्ञाःसर्वदर्शिनः सकलकार्याः सकलमुखास्त्रिलोकेशास्त्रिलोकेश्वरपूजितास्त्रिलोकनाथास्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकप्रद्योतनकराः ओं वृषभाजितशंभवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभसुपार्श्व चन्द्रप्रभः पुष्पदन्त शीतलश्रेयो वासुपूज्यविमालानन्तधर्म शान्ति कुंथुअरमल्लिमुनिसव्रतनमिनेमिपार्श्वनाथश्रीवर्द्धमानशान्ताः शान्तिकराः सकलकर्मरिपुविषयकान्तारदुर्गविषमेषु रक्षन्तु नोजिनेन्द्राः सर्वविदश्च। श्री ह्री धृतिविजय कीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यो मेधाविन्यः सेवाकृषिवाणिज्यवाद्यरेख्यमन्त्रसाधन चूर्णिप्रयोगस्थानगमनसिद्धसाधनायाप्रतिहतशक्तयो भवन्तु नो विद्यादेवताः। नित्यमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधवश्च भगवन्तो नः प्रीपंतां प्रीन्यतां प्रीयन्ताम् आदित्यसोमांगारकबुधवृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहु केतुग्रहाश्च नः प्रीयन्तां प्रीयन्तां प्रीयन्ताम्। तिथिकरणमुहूर्त्तलग्नदेवता इह चान्यग्रामादिष्वपिवासुदेवताः सर्वे गुरुभक्ता अक्षीण कोशकोष्ठांगागभवेयुः। ध्यानतपोवीर्यकर्मानुष्ठानादिमेवास्तु मातृपितृभ्रातृसुतसुहृत्स्वजनसम्बधिबन्धुवर्गसहितानां धनधान्यैश्वर्यद्युतिबलयशोवृद्धिरस्तु सामोदप्रमोदोस्तु शान्तिर्भवतु कान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु सिद्धिर्भवतु काममांगल्योत्सवाःसन्तु शाम्यन्तु घोराणि पुण्यं वर्द्धताम् धर्मो वर्द्धताम् यशो वर्द्धताम् श्रीश्च वर्द्धताम् कुलं गोत्रं चाभिवर्द्धताम् स्वस्तिभद्रं

चास्तु वः हतास्ते परिपन्थिनः शत्रुर्निधनं यातु निःप्रतीपमस्तु शिव-मतुलमस्तु सिद्धाः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः स्वाहा ।

इति पुण्याहवाचन मंत्रः ।

ओं ह्रीं स्वस्तये मङ्गलकुम्भं स्थापयामि स्वाहा (इति वामे-मङ्गलकलशस्थापनम् । तत्र स्थालीपाकप्रोक्षणपात्रपूजाद्रव्यहोमद्रव्य स्थापनम्)

यह मन्त्र पढ़ कर कुण्ड के बाईं ओर मंगलकलश स्थापन करना चाहिये और उसी के पास स्थाली पाक (गंध पुष्प अक्षत फल आदि से सुशोभित पांच पंचपात्र*) प्रोक्षणपात्र (प्रोक्षण करने योग्य रकाबी) पूजा और होम को सामग्री रक्खे ।

ओं ह्रीं परमेष्ठिभ्यो नमो नमः (इति परमात्मध्यानम्)

यह मन्त्र पढ़कर परमात्मा का ध्यान करे ।

ओं ह्रीं णमो अरहंताणं ध्यातृभिरभीप्सितफलदेभ्यः स्वाहा । (इति परमपुरुषस्यार्घ्यप्रदानम्)

यह मंत्र पढ़ कर परमात्मा को अर्घ्य देवे ।

ओं ह्रीं नीरजसे नमः ओं दर्पमथनाय नमः ।

ये दोनों मंत्र कुंड में लिखे और फिर जल दर्भ गंध अक्षता-दिक से कुण्ड की पूजा करे ।

ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं अग्निं स्थापयामि स्वाहा (अग्नि-स्थापनम्)

यह मन्त्र पढ़ कर कुण्ड में अग्नि स्थापन करे ।

ओं ओं ओं ओं रं रं रं रं दर्भं निक्षिप्य अग्निसन्धुक्षणं करोमि स्वाहा (अग्निसन्धुक्षणम्)

---

*तांबे के छोटे छोटे गिलासों को पंचपात्र कहते हैं ।

जिसने संस्कारों की विशुद्धि द्वारा वर्णोत्तमता (सज्जातित्व प्राप्त नहीं की है वह कदापि श्रेष्ठ नहीं है । संस्कार विहीन (असज्जाति) मनुष्य अपनी आत्माको शुद्ध नहीं कर सकता और न दूसरों को शुद्ध बना सक्ता है।

यज्ञोपवीत धारणकरने वालोंको कबसे कौन २
से व्रत पालन करने पड़ते हैं

यज्ञोपवीत आठ वर्षके बालक की अवस्थासे धारण किया जाता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यका विशुद्धकुलकी विशुद्ध संतान को अपनी आठ वर्ष की अवस्था में आगम की विधिके अनुसार यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। जिसने आठ वर्षकी अवस्था में यज्ञोपवीत धारण नहीं किया हो वह विवाह के समय यज्ञोपवीत को विधिपूर्वक धारण करे। जिसने किसी कारण से विवाह के समय भी विधिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण नहीं किया हो, उसको गुरु के समीप यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

गृहस्थों को किसी भी समय किसी भी कारण से यज्ञोपवीत धारण किये बिना एक क्षणमात्र नहीं रहना चाहिये जिस गृहस्थ ने यज्ञोपवीत नहीं धारण किया है वह दान देने और भगवान की पूजा करनेका अधिकारी नहीं हैं। जनेऊ पहने बिना दान और भगवान की पूजा नही करनी चाहिये। जोलोग जनेऊ (यज्ञोपवीत) धारण किये बिना भगवान की पूजा करते हैं वे जिनागमकी आज्ञा से बहिर्भूत हैं। कदाचित कोई अज्ञान या बिना विचारे यज्ञोपवीत धारण करने में दुराग्रह करते हैं और यज्ञोपवीत के धारण किये बिना ही भगवान की पूजा करते हैं वे जिनागमकी आज्ञाको नहीं मानने वाले मिथ्यादृष्टी हैं।

यज्ञोपवीत के बिना गृहस्थ शूद्र के समान है । यद्यपि शूद्र

कुलमें जन्म नही है तथापि संस्कारों का अभाव होने से वह एक प्रकार से शूद्र ही है।

इसलिये सबको यज्ञोपवीत धारण करना ही चाहिये। यह न विचार करे कि यज्ञोपवीत आठ वर्षकी उमर (आयु) में धारण किया जाता है मेरी आयु तो चालीस वर्ष की है मैं तो पचास वर्षका वृद्ध हूं। अब यज्ञोपवीत धारण करने का क्या फल होगा ? कितनी ही अपनी अवस्था क्यों न होगई हो परन्तु यज्ञोपवीत अवश्य ही धारण करना चाहिये। यज्ञोपवीत के धारण किये विना रहना है वह जिना-गम के विरुद्ध मनोनीत भावों से रहना है।

इसी प्रकार हमारे कुलमें किसी ने आज तक जनेऊ नहीं पहना है हम क्यों पहने ? ऐसे मिथ्या विचारों के कारण यज्ञोपवीत धारण नहीं करना भी जिनागम की आज्ञाको नहीं मानना है।

यज्ञोपवीत की क्रिया हमसे पालन नहीं हो सक्ती है। यज्ञोप वीत गृहस्थों से किस प्रकार धारण किया जाय। महान व्रत पालन करने वाले और महान पवित्र आचरण करने वाले ही यज्ञोपवीत धारण करते हैं। ऐसे विचार से जो गृहस्थ यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं वे जिनागमके ज्ञानसे रहित हैं। श्रावककी क्रिया के ज्ञानसे रहित हैं। उनको श्रावक के आचरणों का परिज्ञान नहीं है। शास्त्रों के पढ़लेने पर भी उनको शास्त्रका परिज्ञान नहीं है स्वाध्याय करने पर भी वे स्वाध्याय के फल से रहित हैं।

यज्ञोपवीत धारण करने वाले भव्य जीवोंको निम्न लिखित व्रत यज्ञोपवीत धारण करते समय ग्रहण करने पड़ते हैं। इन व्रतों के धारण किये बिना यज्ञोपवीत धारण नहीं किया जाता है।

१ मद्य-मांस-मधुका परित्याग करना।

२ वड़फल-पीपलफल-उदुम्बर (गूलर) पाकरफल और

कठूम्बरफल (एक वृक्षका फल होता है) इन पांच फलों का परित्याग करना।

३ जिनदर्शन नित्य करना।

४ रात्रिमें अन्नपदार्थ का सेवन नहीं करना।

५ पानी छानकर पीना।

६ मिथ्या देवोंको कभी किसी कारण से नमस्कार नहीं करना, न पूजना, न उनकी मान्यता करना।

७ मिथ्या शास्त्रों का श्रद्धान नहीं करना और मिथ्यागुरुको नमस्कार नहीं करना।

८ अपनी शक्ति हो तो पंच अणुव्रत धारण करना।

९ समस्त जीवों पर दयाभाव रखना।

यज्ञोपवीत धारण करने की विधी

ब्रह्मसूरि विरचित-जिनसंहिता।

अथ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानां गर्भाष्टमेब्दे-आषोडशवर्षाद् युगाब्दे वा माणवकानुकूलशुभतिथौ पूर्व चैत्यालये भगवदर्हतां महाभिषेकमेकादशविधार्चनं-१ यंत्रमंडलसमाराधनं गृहे माणवकस्य स्नानमलंकरणमुचितासनोपवेशनं। शिरसि दर्भैगंधोदकसेचनं। शिखावशेषकेशवापनं पुनर्मंगलस्नानं। अग्नि संधुक्षणान्ता होमक्रिया। तदग्रे शुभमुहूर्त्ते मंगलस्तोत्राशीर्वादपठनपूर्वकशिरःस्पर्शनोपनीतिक्रियाविधिः॥

कौपीनेनान्तर्वासो निर्विकारोत्तरीयपरिधारणं। मौंजीवन्धनं यज्ञोपवीतधारणं। ब्रह्मग्रन्थियुतशिखायामर्हत्पादशेषाधारणं। शौचा

१--संपादनं पूजनमिति वा।

चमनाद्यर्थाद्युपदेशनं। आचमनप्रोक्षणाद्यंतर्पणानां मंत्रतो विधापन-मवशिष्टहोमक्रियानिवर्तनं। पुण्याहवाचनं विभूत्याबंधुभिस्सह चैत्यालयगमनं। त्रिवारचैत्यालयप्रदक्षिणा। अर्हत्श्रुतगुरूणामर्चनंप्रणमनं तत्रोचितोद्देशे पंचचूर्णैर्विरचितसद्बीजाक्षरसंयुताग्निवाय्वम्बुभूनभोमंडलानांमध्येक्षतविरचितस्वस्तिके सद्दर्भे पद्मासनेन कुमारविनिवेशनं। तत्समीपे जलचन्दनाक्षतफलादिद्रव्यनिक्षेपणं २ परमगुरुणापि ३ शिक्षकेणार्चनं (?) द्विजोत्तमेन वा। सम्यग्दर्शनस्याणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रतानामुपदेशनमागमोक्तप्रकारेण। मद्यमांसाद्यभोज्यानां वर्जनमस्यातिवालविद्याद्युपदेशनं। शिरस्पर्शनपूर्वकपंचगुरुमन्त्रोपदेशः। सामायिकाद्यनुष्ठानंत्रिसंध्याकालवन्दनया च नित्यनैमित्तिकपूजायाश्चोपदेशः।

शांतिमंत्रेण-अङ्गस्पर्शनं। शिरसि सव्यपाणिना पंचगुरुमंत्र स्थापनं। तदापरमार्थद्विजत्वं बिभ्राणेन कुमारेण सिद्धार्चनं आचार्य पूजनं देवगुरुश्रुतपितृशिक्षकज्येष्ठानां यथोचितवन्दना। स्वगृहगमनं। भिक्षायाचनं भिक्षां देहीतिवचनेनभिक्षास्वीकरणं देवतातर्पणं। बंधु गृहलब्धवस्तुसुवर्णादिकं आचार्यसंतर्पणं। उपासकाध्ययनपुस्तकार्पण मेकादशनिलयोचितमारोपणमित्यादि।

यज्ञोपवीत किस प्रकार धारण करना ?

यज्ञोपवीत धारण करनेवाला भव्यजीव अपने बालों (क्षौर-कर्म) को उस्तरा से बनवाकर शुद्ध हो मन की शल्यको दूर कर जिनागम की श्रद्धा रख कर कुलकी आम्नायको पवित्र रखने के लिये और सज्जातित्व प्रकट करने के लिये यज्ञोपवीत धारण करने की नीचे लिखे अनुसार विधि करे, क्षौरकर्म कराकर श्रीजिनेन्द्र देवका

२–सहार्थे तृतीया प्रतीयते। ३--जिनार्चनमत्र भाव्यम।

पंचामृताभिषेक विधि पूर्वक करै। कमर में मूंजकी कंधोनी पहने, और सफेद धुले हुये, धोती दुपट्टा पहने, यज्ञोपवीत का भगवान के गंधोदक में अभिषेक करावे। यज्ञोपवीत को रत्नत्रय मानकर रत्न-त्रयकी पूजन संक्षेप में करै। अपने शरीर पर गंधोदक खूब अच्छी तरह लगावे शिरपर गंधोदकका सिंचन करे। स्वस्तिक चंदन से मस्तक पर बनावे। और लघु हवन—एवं शांति और पुण्याहवाचन मंत्र पढे। इस प्रकार यज्ञापवोत धारण करने की यह संक्षेप विधि है।

कदाचित इतनी विधि भी न बन सके तो क्षौरकम कराकर श्रीजिनेन्द्र देवका अभिषेक करै अभिषेक में यज्ञोपवीत का रत्नत्र-यका अभिषेक पाठकर अभिषेक करै और धोती दुपट्टा नवीन पहन कर गुरु से यज्ञोपवीत ग्रहण करै।

बालकों को यज्ञोपवीत का आगमकी विधि अनुसार ही संस्कार कराना चाहिये। बालकों को यज्ञोपवीत संस्कार विधि के विना कदापि नहीं कराना चाहिये।

वृद्ध और युवाओं को भी विधि पूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये। कदाचित विधि न हो सके तो श्रीजिनेन्द्र देवका अभिषेक कर गुरु से यज्ञोपवीत ग्रहण करना चाहिये।

एकवार यज्ञोपवीत संस्कार कराने के पश्चात् फिर यज्ञोपवीत जन्म पर्यंत धारण करना चाहिये यज्ञोपवीत दो चार दिवस या महीना के लिये नहीं पहना जाता है क्योंकि—

उपनीतिर्हि वेषस्य वृत्तस्य समयस्य च।
देवतागुरुसाक्षि स्याद्विधिवत् प्रतिपालनम्॥

भावार्थ—यज्ञोपवीत और यज्ञोपवीत के धारण करते समय ग्रहण किये हुए व्रतों (जो देव—गुरु की साक्षी से ग्रहण किये हैं) को यावत् जीव प्रतिपालन कराना चाहिये, देवगुरु साक्षी से ग्रहण किये हुए व्रत तथा यज्ञोपवीत को विधिपूर्वक पालन करना चाहिये। ऐसा नहीं कि पूजा के समय यज्ञोपवीत धारण कर लिया और फिर छोड़ दिया। ऐसा करनेवाले व्रतखंडन करने के पाप के भागी होते हैं। व्रत का भंग करना महान पाप जिनागम में माना है।

यज्ञोपवीत श्रावण सुदी पूर्णमा (रक्षाबन्धन) के दिवस बद-लना चाहिये। नवीन यज्ञोपवीत धारण करना और पुराना यज्ञोपवीत जलाशय में छोड़ना चाहिये। उस दिन भगवान श्रीजिनराज का अभिषेक करै रत्नत्रय की पूजा करै और लघु होम करै।

घर पर सूतक होने पर—मुर्दा को जलाने पर कुटम्ब में अतिशय समीप संबंधी की मृत्यु होने पर—बालक बालिका का जन्म होने पर यज्ञोपवीत को बदल लेवे।

यज्ञोपवीत टूट जाने पर बदल लेना चाहिये।

अपवित्र और मलिन विष्टा मल मूत्र रक्त आदि का संसर्ग होजाने पर यज्ञोपवीत बदल लेना चाहिये।

चांडालादि अस्पर्श्य जनताने यज्ञोपवीत को छू (स्पर्श कर) लिया हो तो यज्ञोपवीत बदल लेना जाहिये।

स्पर्श शूद्र के साथ भूल या अज्ञान से खान पान होगया हो तो प्रायश्चित्त ग्रहण कर यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार कराना चाहिये।

मद्यसेवी और मांसभक्षी के साथ भूल या अज्ञान से खान पान हो गया हो तो प्रायश्चित्त ग्रहण कर यज्ञोपवीत का पुनः संस्कार कराना चाहिये।

शूद्र पतित जातिच्युत आदि निंदित मनुष्य के साथ खान पान व्यवहार यज्ञोपवीत धारक भव्यजीव को नहीं करना चाहिये।

गौ कुत्ता बिल्ली सर्प आदि पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने पर या भूल अथवा अज्ञान से हिंसा हो जाने पर प्रायश्चित्त विधि से शुद्धि करा कर गुरु से ही पुनः यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये। यदि भावों की विशुद्धि न हो और जिनागम पर श्रद्धान न हो तो समाज उसको शूद्र के समान समझे।

यज्ञोपवीत ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ही को धारण करना चाहिये।

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि।

यज्ञोपवीत धारण करनेवाले भव्यात्माओंको सदैव यह विचार रखना चाहिये कि यज्ञोपवीत रत्नत्रय है परम पवित्र है। श्रीजिनेन्द्र भगवान की आज्ञा स्वरूप है सज्जातिकी व्यक्तता करने का मुख्य चिन्ह स्वरूप है। व्रत रूप है। श्रावक धर्म का मूल निशान है। धर्मका वीज है। शुद्धि का परम पवित्र कारण है। मोक्षमार्गकी पात्रताका आदर्श नमूना है। दान पूजादि सत्कर्म एवं सदाचार प्रवर्त्त कराने का मूल निमित्त कारण है। इसलिये यज्ञोपवीत एक प्रकारका देव है उससे किसी भी मलिन पदार्थ का संयोग न हो। मलिन अङ्ग का संसर्ग न हो मलिन स्थान में वह देव (यज्ञोपवीत) गिर नहीं जावे। इसलिये सम्यग्दृष्टी श्रावक को यज्ञोपवीत की पूर्ण रक्षा करनी चाहिये। ऐसी संभाल रखना चाहिये कि जिससे यज्ञोपवीत मलिन वस्तु से छू न जावे।

पेशाब के जाते समय पेशाबकी छींटे यज्ञोपवीत पर नहीं गिर पड़ें और इन्द्रिय से यज्ञोपवीत का स्पर्श न हो जावे, इसलिये यज्ञोपवीत को दक्षिण कान पर स्थापित करना चाहिये।

मल छोड़ने के समय (शौच के समय) यज्ञोपवीत को वाम कर्ण पर स्थापित करे शिरसे लपेट कर वामकर्ण पर स्थापित करना चाहिये।

वांती (वमन उल्टी) होने के समय यज्ञोपवीत को गले में दो तीन बार लपेट लेना चाहिये। जिससे वमन के छींटे यज्ञोपवीत पर न गिरने पावें।

मैथुन करते समय यज्ञोपवींत मस्तक पर स्थापित करना चाहिये जिससे अपवित्र वस्तुका संयोग यज्ञोपवात से नहीं हो।

इसी प्रकार मलिन वस्तु के संयोग की आशंका होने पर यज्ञो पवीत को संभाल कर उच्चस्थान में स्थापित करना चाहिये।

नोट --किसी भव्यजीव ने पेशाव करते समय या शौच जाते समय यज्ञोपवीत को उच्चस्थान (कर्णादि) पर स्थापित नहीं किया और विधी का अभ्यास नही होने से भूल जाय तो नौवार णमोकार मंत्र का जाप करने से शुद्धि हो जाती है। इसी प्रकार मैथुनके समय यज्ञोपवीत को मस्तक पर (शीर्ष) स्थापित करने से भूल होजाय तो नववार णमोकार मंत्र की जापदेना चाहिये। यही इसका प्रायश्चित है। रात्रिके समय यज्ञोपवीत दुहरा रखनेसे मस्तक पर स्थापन करने की विशेष आवश्यकता नहीं भी रहती है।

यह समस्त विधी आगम में बतलाई है। यथा-

शिर; प्रदेशे कर्णेवा धृत यज्ञोपवीतकः

भावार्थ—कोई भी कार्यमें यज्ञोपवीत कान या मस्तक पर धारण करे।

यह मन्त्र पढ़कर तिथिदेवता का पूजन करे। प्रतिपदा के दिन यक्षदेव द्वितीयाको वैश्वानर तृतीयाको राक्षस चतुर्थीको निऋ`ति पंचमीको पन्नग षष्ठीको असुर सप्तमीको सुकुमार अष्टमीको पितृदेव नवमीको विश्वमाली दशमी को चमर एकादशीको वैरोचन द्वादशीको महाविद्या त्रयोदशीको मारदेव चतुर्दशीको विश्वेश्वर और अमावास्या अथवा पूर्णिमाको पिण्डभुजका पूजन करना चाहिये। मन्त्र में जहां यक्षदेव लिखा है वहां जिस तिथिको पूजन किया हो उस तिथिके देवताका नाम लेना चाहिये जैसे द्वितीयाको वैश्वानरदेव तृतीयाको राक्षसदेव इत्यादि।

ओं ह्रीं क्रौं प्रशस्तवर्गसर्वलक्षणसम्पूर्णयानायुधयुवतिजनसहितादित्य इमं वलिं गृहाण गृहाण स्वाहा।

यह मन्त्र पढ़कर वारदेवता का पूजन करे। रविवार के दिन आदित्य, सोमवारको सोम, मंगल के दिन भौम, बुध के दिन बुध, बृहस्पति के दिन गुरु, शुक्रके दिन शुक्र और शनिवारके दिन शनिका पूजन करना चाहिये। जो दिन हो उस दिन उसी का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर घर में स्त्रियों को सत्यदेवता (अरिहन्त आदि पंच परमेष्ठी, क्रिया देवता (छत्र चक्र अग्नि) कुलदेवता (विश्वेश्वरी धरणेन्द्र,श्री देवी कुवेर) की पूजा करनी चाहिये।

लघु अभिषेक पाठ ।

श्री मज्जिनेन्द्र मभिवंद्य जगत्त्रयेशं
स्याद्वादनायक मनन्त चतुष्टयार्हम्
श्री मूलसंघ सुदृशां सुकृतैक हेतु
जैनेन्द्रयज्ञ विधिरेष मयाभ्यधायि ।

इस श्लोक को पढकर जिन चरणों में पुष्पांजलि चढानी चाहिये ।

श्रीमन्मन्दर सुन्दरे शुचिजलै धौतैः सदर्भाक्षतैः ।
पीठे मुक्तिकरं निधाय रचितं त्वत्पादपद्मस्रजः ।
इन्द्रोहं जिनभूषणार्थक मिदं यज्ञोपवीतं दधे ।
मुद्राकंकण शेखराण्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ।

इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करने वालों को यज्ञोपवीत नाना प्रकार के सुन्दर आभूषण धारण करना चाहिये ।

सौगंध्यसंगत मधुव्रत झंकृतेन
संवर्ण्यमानविम गंधमनिंद्यमादौ ।
आरोपयामि विबुधेश्वर बृन्दवंद्य
पादारविंद मभिवंद्य जिनोत्तमानाम् ॥ ३ ॥

इस श्लोक को पढकर अभिषेक करने वालों को अङ्ग में चन्दन के नव तिलक करना चाहिये ।

ये संति केचिदिह दिव्य कुल प्रसूता
नागाः भूत बल दर्पयुता विबाधाः ।
संरक्षणार्थ ममृतेन शुभेन तेषाँ
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥ ४

इसको पढकर अभिषेक के लिये भूमि या चौकी का प्रक्षालन करना चाहिये ।

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः
प्रक्षालितं सुरवरै यदनेक वारम् ।
अत्युद्ध मुद्यतमहं जिनपाद पीठं
प्रक्षालयामि भवसंभवतापहारि ॥ ५

इसको पढकर जिस सिंहासन पर विराजमान करके अभिषेक करना हो उसका प्रक्षालन करना चाहिये ।

श्रीशारदा सुमुख निर्गत बाजवर्णं
श्रीमंगलीक वर सर्व जनस्य नित्यं ।
श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं
श्रीकार वर्ण लिखितं जिनभद्र पीठे ॥ ६

इस श्लोक को पढ़कर पीठ पर श्रीः लिखना चाहिये ।

इन्द्राग्निदंडधर नैऋत पाशपाणि
वायूत्तरेशशशिमौलिफणीन्द्रचन्द्राः ।

अगत्य यूयमिह सानुचराः सचिन्हाः
स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ॥ ७

इस श्लोक को पढकर नीचे लिखे मन्त्र पढ़ने चाहिये और प्रत्येक मन्त्र को पढ़कर आह्वानन पूर्वक एक एक अर्घ्य देना चाहिये मन्त्र ये हैं—

१ ओं आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा ।
२ ओं आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा ।
३ ओं आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।
४ ओं आं क्रौं ह्रीं नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा
५ ओं आं क्रौ ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा ।
६ ओं आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा ।
७ ओं आं क्रौं ह्रीं कुवेर आगच्छ आगच्छ कुवेराय स्वाहा ।
८ ओं आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा ।
९ ओं आं क्रौं ह्रीं धरणीन्द्र आगच्छ आगच्छ धरणीन्द्राय स्वाहा ।
१० ओं आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

इति दिक्पाल मंत्राः ।

दध्पुज्ज्वलाक्षत मनोहर पुष्पदीपैः
पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण ।
त्रैलोक्य मंगलसुखानल कामदाह
मारार्तिकं तव विभोरवतारयामि । ८

इस श्लोकको पढ़कर दधि अक्षत पुष्प और दीप रकाबी में लेकर मंगलपाःठ तथा अनेक वादित्रों के साथ त्रैलोक्यनाथ की आरती उतारनी चाहिये ।

यं पाँडु कामल शिलागत मादिदेव ।
मस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि
कल्याण मीप्सुरह मक्षत तोय पुष्पैः
संभावयामि पुर एव तदीय विम्बम् ॥ ६

इस को पढ़कर जल अक्षत पुष्प क्षेपकर श्रीकार लिखित पीठपर जिनविंवको स्थापन करना चाहिये ।

सत्पल्लवार्चितमुखान् कलधौतरूप्य
ताम्रारकूट घटितान् पयसा सुपूर्णान् ।
संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्
संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकान्ते ॥ १०

इसको पढ़ कर जल से भरे सुन्दर पत्तों से ढके सुवर्णादि धातु के चार कलश वेदी के चारों कोनों में स्थापन करना चाहिये

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमल बहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक् पेयैरमीभिः शुचि सदलचयैरुद् गमैरेभिरुद्धैः
हृद्यैरेभि र्निवेद्यै र्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः
धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि

ओं ह्रीं श्री परमदेवाय श्री अर्हत्परमेष्ठिनेर्घं निर्बपामीति स्वाहा ।

दूरावनम्रसुरनाथ किरीटकोटी
संलग्नरत्नकिरणच्छविधूसराघ्रिम् ।

प्रस्वेदताप मलमुक्तमपि प्रकृष्टै
र्भक्त्याजलैर्जिनपतिं वहुधाभिषिंचे ।। १२

ओं ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीरपर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्य खण्डे——नाम नगरे मासानामुत्तमे मासे—मासे—पक्षे—— शुभतिथौ——शुभदिने मुनि आर्यिका श्रावकश्राविकाणां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिंचे, नमः ।

इसे पढ़कर श्रीजिनप्रतिमापर जल के कलश से धारा छोड़नी चाहिये । प्रत्येक धारा के बाद ' उदकचन्दन ' आदि श्लोक बोलकर अर्घ चढाना चाहिये ।

उत्कृष्टवर्ण नव हेम रसाभिराम
देहप्रभावलय संगम लुप्तदीप्तिम् ।
धारांघृतस्य शुभगंधगुणानुमेयां
वन्देर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्तां ।। १३

यह श्लोक पढकर घृत से अभिषेक करना चाहिये ऊपर लिखा 'ओं ह्रीं श्रीमन्तं ' आदि मंत्र बोलना चाहिये और उसमें 'जलेना भिषिंचे' की जगह 'घृतेनाभिषिंचे, बोलना चाहिये ।

सम्पूर्णशारद शशांक मरीचि जाल
स्यन्दैरिवात्म यशसामिवसुप्रवाहैः ।
क्षीरै जिनाः शुचितरै रभिषिच्यमानाः
संपादयन्तु मम चित्तसमीहितानि ।। १४

यह श्लोक पढकर दूधसे अभिषेक करना चाहिये । ऊपर लिखा ओं ह्रीं श्रीमन्त" आदि मन्त्र बोलना चाहिये। और उसमें जलेनाभिषिंचे ' की जगह ' क्षीरेणाभिषिंचे ' बोलना चाहिये ।

दुग्धाब्धि वीचिपयसां चितफेनराशि
पाँडुत्वकाँतिमवधीरयतामतीव
दध्नाँ गता जिनपतेः प्रतिमाँ सुधारा
सम्पद्यतां सपदि वांच्छित सिद्धये नः ॥ १५

यह श्लोक पढ़कर दही से अभिषेक करना चाहिये। ऊपर लिखा 'ओं ह्रीं श्रीमन्तं' आदि मन्त्र बोलना चाहिये और उस में 'जलेनाभिषिंचे' की जगह 'दध्नाभिषिंचे' बोलना चाहिये ।

भक्त्या ललाटतट देश निवेशितोच्चैः
हस्तैश्च्युताः सुरवरासुरमर्त्य नाथैः ।
तत्कालपीलित महेक्षुरसस्य धारा
सद्यः पुनातु जिनबिंवगतैव युष्मान् ॥ १६

यह श्लोक पढ़कर इक्षुरससे अभिषेक करना चाहिये। ऊपर लिखा 'ओंह्रीं श्रीमन्तं'आदि मंत्र बोलना चाहिये और उसमें'जलेना-भिषिंचे' की जगह इक्षु रसेनाभिषिंचे बोलना चाहिये ।

संस्नापितस्य घृत दुग्धदधीक्षुवाहैः
सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्वलाभिः ।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला
कालेय कुंकुम रसोत्कटवारिपूरैः ॥ १७

यह श्लोक पढ़कर केसर आदि सर्वौषधि से अभिषेक क चाहिये। ऊपर लिखा 'ओं ह्रीं श्रीमन्तं' आदि मन्त्र बोलना चा और उसमें जलेन की जगह सर्वौषधेनाभि षिंचे बोलना चाहिये।

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यै
रामोद्‌वासित समस्तदिगन्तरालैः।
मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुंगवानां॥
त्रैलोक्य पावनमहं स्नानं करोमि ॥ १८

यह श्लोक पढ़कर सुगन्धित जल से अभिषेक करना चाहिये। जल में केसर कपूर डालकर सुगन्धित बना लेना चाहिये और ऊपर लिखे मन्त्र में जलेन की जगह सुगन्धित जलेन बोलना चाहिये।

इष्टैर्मनोरथ शतैरिव भव्यपुंसां
पूर्णैःसुवर्णकलशै र्निखिलै र्वसानैः।
संसारसागरविलंघनहेतुसेतु
माप्लावये त्रिभुवनैकपतिंजिनेन्द्रं ॥ १९

यह श्लोक पढ़कर तथा ऊपर लिखा मन्त्र बोलकर बाकी बचे हुए समस्त कलशों से अभिषेक करना चाहिये।

मुक्तिश्रीवनिताकरोदक मिदं पुण्यांकुरोत्पादकं
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्र चक्रपदवीराज्याभिषेकोत्सवम्।
सम्यग्ज्ञान चरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकं।
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिनस्नानस्य गंधोदकम् २०

यह श्लोक पढ़कर मस्तक पर गंधोदक लगाना चाहिये।

इति लघुअभिषेक विधिः।